लययोग-संहिता



प्रकाशक—

श्रीभारतधर्म महामण्डल

प्रकाशक—
श्रीभारतधर्म महामण्डल
जगतगंज, वाराणसी कैण्ट

प्रमथ संस्करण
[१०००]
मूल्य २.०० (दो रुपये)

सम्वत् २०२७ सन् १९७०

लययोग संहिता



—प्रकाशक—

श्रीभारतधर्म महामंडल

गुरुपूर्णिमा सम्वत् २०२७ विक्रमी सन् १९७०

प्रकाशक
श्रीभारतधर्म महामण्डल
जगतगंज, वाराणसी



प्रथम संस्करण
[१०००]



मूल्य—२/०० दो रुपये



मुद्रक
ब्र० नारायणस्वरूप द्विवेदी
सन्मार्ग प्रेस टाउनहाल, वाराणसी
फोन : ६५१३८

श्रीविश्वनाथो जयति ।

प्रस्तावना

उपासना पद्धतिमें योगसाधनका विशिष्ट स्थान है । शास्त्रकारोंका कहना है कि, उपासनाका शरीर योग है और भक्ति उसका प्राण है । योगी योगकी क्रियाओंकेद्वारा ही शरीरको स्वस्थ एवं मनको एकाग्र या समाहित बना सकता है । स्वस्थ शरीर एवं एकाग्र मनकेद्वारा ही उपासनाकी जा सकती है । रुग्ण शरीर एवं चंचल मनकेद्वारा जब साधारण कोई कार्य नहीं हो सकता है, तब उपासनाका साधक बनना कभी सम्भव नहीं हो सकता । इसी विचारसे श्रीभारतधर्म महामण्डलके संस्थापक एवं संचालक हमारे परमाराध्य गुरुदेव प्रभु भगवत् पूज्यपाद अनन्त श्रीविभूषित परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजने धार्मिक जनताकी जिज्ञासाकी पूर्तिकेलिये धर्मकल्पद्रुम नामक सनातनधर्म-विश्वकोषका प्रणयन एवं प्रकाशन कराया है । यह आठखण्डोंमें प्रकाशित है और धार्मिक साहित्यमें अपने ढंगका एक ही ग्रन्थ है, इसके अतिरिक्त बालक-बालिकाओंकी धर्मशिक्षाके उद्देश्यसे प्रारम्भिक कक्षाओंसे लेकर एम. ए. तथा आचार्यके छात्रोंकी धर्म शिक्षाकेलिये पाठ्यग्रन्थके उद्देश्यसे अनेक धार्मिक ग्रन्थोंका प्रणयन और प्रकाशन किया एवं कराया है, मनुष्योंकी आध्यात्मिक क्रमोन्नति एवं बुद्धिकी क्रमोन्नति एवं विकासकेलिये पूज्यपादने लुप्तदर्शन दैवी मीमांसा दर्शन तथा कर्म मीमांसा दर्शनके पूर्वार्द्धका उद्धार अपने समाधियोगसे किया तथा जनसाधारणके बुद्धिगम्य बनानेकेलिये उनपर सरल सुन्दर भाष्यका भी प्रणयन किया है । इसके अतिरिक्त महर्षि पतञ्जलिकृत पातञ्जल दर्शनपर भी उन्होंने भाष्यका प्रणयन किया है । ये सभी ग्रन्थ भी श्रीभारतधर्म महामण्डलके प्रकाशन विभागद्वारा प्रकाशित हो चुके हैं । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—साधकके अन्तर्मुख होनेमें योग क्रियाओंका महत्त्वपूर्ण स्थान है । इधर योगसाधनकी क्रमबद्ध पद्धति लुप्त हो गयी थी । महर्षि पतंजलिकृत योगदर्शनमें योगके सिद्धान्तोंका विशेष वर्णन है, वह साधारणजनोंके बुद्धिगम्य कठिनतासे होनेयोग्य है । पूज्यपाद

श्रीजीमहाराजने योगसाधन पद्धतिको क्रमबद्ध बनाने एवं साधकोंको सहायताकेलिये मन्त्रयोग-संहिता हठयोग-सहिता, लययोग-संहिता एवं राजयोग-संहिता इन चारों संहिताओंका अपने समाधियोगसे आविष्कार किया। इन चारों संहिताओंमेंसे मन्त्रयोग-संहिता एवं हठयोग संहिताका प्रकाशन हो चुका है, किन्तु लययोग-संहिता एवं राजयोग-संहिताका प्रकाशन अनेक असुविधाओंके कारण अबतक नहीं हो सका था। अकारण करुण सर्वशक्तिमयी श्रीजगदम्बाकी कृपासे हिन्दी अनुवादसहित लययोग-संहिता नामक यह योगशास्त्र-का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।

मंत्रयोग-सहिता योगराज्यमें प्रवेश करनेकेलिये प्रथम साधन पद्धति है। इसके पश्चात् दूसरा अधिकार हठयोग-संहिताका है। योगराज्यमें और आगे बढ़नेपर लययोगका अधिकार प्राप्त होता होता है और आगे बढ़नेपर अन्तमें राजयोगका अधिकार स्वयं प्राप्त होता है। मंत्रयोगमें साधनका प्रधान अवलम्बन इष्टमंत्रका जप एवं इष्टदेवताके रूपका ध्यान होता है। हठयोगमें योगकी क्रियाओंका प्राधान्य रहता है। इस योगमें ज्योतिर्ध्यानका विधान है। इस योग-से अन्तर्जगत्में और आगे बढ़नेपर लययोगके साधनका अधिकार प्राप्त होता है। लययोगमें स्थूल क्रियाओंकी अपेक्षा सूक्ष्म क्रियाओं-की बहुलता है। इस योगका ध्यान बिन्दु-ध्यान है। योगका अन्तिम लक्ष्य राजयोग है। राजयोगमें बुद्धि एवं विचार-सम्बन्धी साधनों-की बहुलता रहती है। इस अन्तिम योगसाधनकी पद्धति राजयोगका ध्यान ब्रह्म ध्यान है। राजयोगके साधनमें सिद्धि प्राप्तकर लेनेपर योगी साधक कृतकृत्य हो जाता है, उसे अत्र किसी साधनकी अपेक्षा नहीं रह जाती है, क्योंकि वह ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है। एवं पानेयोग्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। राजयोग संहिता अभीतक प्रकाशित नहीं हो सकी है। आशा है वह भी शीघ्र ही प्रकाशित होकर योग-पथके पथिक जिज्ञासुओंका कल्याण करेगी।

गुरुपूर्णिमा
सम्वत् २०२७ विक्रमी

श्रीगुरुपाद पद्माश्रिता

विद्यादेवी

श्रीविश्वनाथो जयति

लययोग-संहिता

की

विषयानुक्रमणिका

॥ श्री विश्वनाथो जयति ॥

लययोग संहिता

लययोग लक्षणम् ।

ब्रह्माण्डपिण्डे सदृशे ब्रह्मप्रकृतिसम्भवात् ।
समष्टि-व्यष्टि-सम्बन्धादेक-सम्बन्ध-गुम्फिते ॥ १ ॥
ऋषिदेवौ च पितरो नित्यं प्रकृतिपूरुषौ ।
तिष्ठन्ति पिण्डे ब्रह्माण्डे ग्रहनक्षत्रराशयः ॥ २ ॥
पिण्डज्ञानेन ब्रह्माण्डज्ञानं भवति निश्चितम् ।
गुरूपदेशतः पिण्डज्ञानमाप्त्वा यथायथम् ॥ ३ ॥
ततो निपुणया युक्त्या पुरुषे प्रकृतेर्लयः ।
लययोगाभिधेयः स्यात् प्रोक्तमेतन्महर्षिभिः ॥ ४ ॥
आधारपद्मे प्रकृतिः सुप्ता कुण्डलिनी स्थिता ।
सहस्रारे स्थितो नित्यं पुरुषश्चोपगीयते ॥ ५ ॥
प्रसुप्तायां कुण्डलिन्यां बाह्यसृष्टिः प्रजायते ।
योगाङ्गैस्तामप्रबोध्यैव यदा तस्मिन् विलापयेत् ॥ ६ ॥

लययोगके लक्षण

प्रकृति पुरुषात्मक शृङ्गारसे उत्पन्न हुआ ब्राह्माण्ड और पिण्ड दोनों एक ही हैं। समष्टि और व्यष्टि सम्बन्धसे ब्रह्माण्ड और पिण्ड एकत्व सम्बन्धसे युक्त हैं। सुतराम् ऋषिदेवता पितर ग्रहनक्षत्र, राशि, प्रकृति-पुरुष सबका स्थान समान रूपसे ब्रह्माण्ड और पिण्डमें है। पिण्डज्ञानसे ब्रह्माण्ड ज्ञान हो सकता है। श्रीगुरु-उपदेशद्वारा सब शक्ति सहित पिण्डका ज्ञान प्राप्तकर तदनन्तर सुकौशलपूर्ण क्रियाद्वारा प्रकृतिको पुरुषमें लयकरनेसे लययोग होता है। पुरुषस्थान सहस्रारमें है और कुलकुण्डलिनी नाम्नी महाशक्ति आधार पद्ममें प्रसुप्ता है। उसके सुप्त रहनेसे ही बहिर्मुखी सृष्टिक्रिया होती है। योगाङ्गद्वारा उसको जाग्रत

कृतकृत्यो भवत्येव तदा योगपरो नरः ।
पुराविदो वदन्तीमं लययोगं सुखावहम् ॥ ७ ॥

लययोगाङ्गानि ।

अङ्गानि लययोगस्य नवैवेतिपुराविदः ।
यमश्च नियमश्चैव स्थूल-सूक्ष्मक्रिये तथा ॥ १ ॥
प्रत्याहारो धारणा च ध्यानश्चापि लयक्रिया ।
समाधिश्च नवाङ्गानि लययोगस्य निश्चितम् ॥ २ ॥
स्थूलदेहप्रधाना वै क्रिया स्थूलाभिधीयते ।
वायुप्रधाना सूक्ष्मा स्याद्ध्यानं बिन्दुमयं भवेत् ॥ ३ ॥
ध्यानमेतद्धि परमं लययोगसहायकम् ।
लययोगानुकूला हि सूक्ष्मा या लभ्यते क्रिया ॥ ४ ॥
जीवन्मुक्तोपदेशेन प्रोक्ता सा हि लयक्रिया ।
लयक्रियासाधनेन सुप्ता सा कुलकुण्डली ॥ ५ ॥
प्रबुध्य तस्मिन्पुरुषे लीयते नात्र संशयः ।
शिवत्वमाप्नोति तदा साहाय्यादस्य साधकः ॥ ६ ॥

करके पुरुषके पास लेजाकर लय करदेनेसे योगी कृतकृत्य होता है, इसीका नाम लययोग है ॥१–७॥

लययोगके अङ्ग ।

योगतत्वज्ञ महर्षियोंने लययोगके नव अङ्ग वर्णन किये हैं। यम, नियम, स्थूलक्रिया, सूक्ष्मक्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लयक्रिया और समाधि, ये नव अङ्ग लययोगके हैं। स्थूलशरीर प्रधान स्थूलक्रिया और वायुप्रधान क्रियाको सूक्ष्मक्रिया कहते हैं। बिन्दुमय प्रकृति पुरुषात्मक ध्यानको बिन्दुध्यान कहते हैं। यह ध्यान लययोगका परम सहायक है। लययोगानुकूल अतिसूक्ष्म सर्वोत्तम क्रिया जो केवल जीवन्मुक्त योगियोंके उपदेशसे प्राप्त होती है, ऐसी सर्वोन्नत क्रियाओंको लयक्रिया कहते हैं। लयक्रियाओंके साधनद्वारा प्रसुप्ता महाशक्ति प्रबुद्ध होकर ब्रह्ममें लय होती है। इनकी सहायता से जीव शिवत्वको प्राप्त होता है। लयक्रियाकी सिद्धिसे

लयक्रियायाः संसिद्धौ लयबोधः प्रजायते ।
समाधिर्येन निरतः कृतकृत्यो हि साधकः ॥ ७ ॥

यमवर्णनम् ।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्ज्जवम् ।
क्षमा धृतिर्मिताऽऽहारः शौचन्त्वेते यमा दश ॥ १ ॥

अहिंसा ।

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ।
अक्लेशजननं प्रोक्तमहिंसात्वेन योगिभिः ॥ २ ॥

सत्यम् ।

सत्यं भूतहितं प्रोक्तं न यथार्थाभिभाषणम् ॥ ३ ॥

अस्तेयम् ।

कर्मणा मनसा वाचा परद्रव्येषु निःस्पृहा ।
अस्तेयमिति सम्प्रोक्तमृषिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥ ४ ॥

ब्रह्मचर्यम् ।

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्य्यम्प्रचक्षते ॥ ५ ॥

महालयनामक समाधिकी प्राप्ति होती है । जिससे साधक कृतकृत्य हो जाता है ॥ १-७ ॥

यमवर्णन ।

अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा धृति, मिताहार, शौच ये दश यम हैं ॥ १ ॥

अहिंसा ।

मानसि और वाचिक कर्मसे किसी समय भी किसी प्राणीको दुःख न दे.. अहिंसा है ॥ २ ॥

सत्य ।

जिस वचनसे प्राणियोंका हित हो वही सत्य है, केवल यथार्थ बोलना ही सत्य नहीं है ॥ ३ ॥

अस्तेय ।

मन, वचन तथा कर्मसे परायेधनकी अभिलाषा न होनेको तत्ववेत्ता महर्षिगण अस्तेय कहते हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां यतीनां नैष्ठिकस्य च ।
ब्रह्मचर्यं च तत्प्रोक्तं तथैवारण्यवासिनाम् ॥ ६ ॥
ऋतावृतौ स्वदारेषु सङ्गतिर्या विधानतः ।
ब्रह्मचर्यं तदप्युक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥ ७ ॥

दया ।

सर्वदा सर्वभूतेषु सर्वथाऽनुग्रहस्पृहा ।
कर्मणा मनसा वाचा दया सम्प्रोच्यते बुधैः ॥ ८ ॥

आर्जवम् ।

प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा एकरूपत्वमार्जवम् ॥ ९ ॥

क्षमा ।

प्रियाप्रियेषु सर्वेषु समत्वं यच्छरीरिणाम् ।
क्षमा सैवेति गदिता विद्वद्भिर्वेदवादिभिः ॥ १० ॥

धृतिः ।

अर्थहानौ च बन्धूनां वियोगे चापि सम्पदि ।
भूयः प्राप्तौ च सर्वत्र चित्तस्य स्थापनं धृतिः ॥ ११ ॥

ब्रह्मचर्य ।

मन, वचन और कर्मसे सब अवस्था और सब समयमें सब जगह मैथुनके त्यागको ब्रह्मचर्य कहते हैं । ब्रह्मचारी, संन्यासी, नैष्ठिक और वानप्रस्थोंका यही ब्रह्मचर्य कहा है । गृहस्थोंका ब्रह्मचर्य्य ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे विधिपूर्वक संगति करनेसे भी होता है ॥ ५-७ ॥

दया ।

मन, वचन व कर्मसे सर्वदा सब प्रकारसे सब प्राणियोंपर अनुग्रहस्पृहाका नाम दया है ॥ ८ ॥

आर्जव ।

प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिमें एक रूप रहना आर्जव है ॥ ९ ॥

क्षमा ।

प्रिय और अप्रिय विषयामें जो मनुष्योंकी समान स्थिति है, उसको वेदवादी विद्वान्गण क्षमा कहते हैं ॥१०॥

धृति ।

अर्थके नाश होनेपर और वन्धुओंसे वियोग होनेपर सम्पत्ति तथा विपत्ति में भी चित्तको दृढ़ रखना धृति है ॥११॥

मिताहारः ।

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्या षोडशारण्यवासिनाम् ।
द्वात्रिंशद्धि गृहस्थानां यथेष्टं ब्रह्मचारिणाम् ॥ १२ ॥
तेषामयं मिताहारस्त्वन्येषामल्पभोजनम् ॥ १३ ॥

शौचम् ।

शौचन्तुद्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरन्तथा ।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यंमनःशुद्धिस्तथान्तरम् ॥ १४ ॥
मनःशुद्धिस्तु विज्ञेया धर्मेणाध्यात्मविद्यया ।
अध्यात्मविद्याधर्मश्च पित्राचार्येण चाप्यते ॥ १५ ॥

नियमवर्णनम् ।

तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम् ।
सिद्धान्तश्रवणञ्चैव ह्रीर्मतिश्च जपो व्रतम् ॥ १ ॥
एते च नियमाः प्रोक्तास्तांश्च सर्वान्पृथक् शृणु ॥ २ ॥

मिताहार ।

मुनिको आठग्रास और अरण्यवासी वानप्रस्थोंको सोलहग्रास गृहस्थको बत्तीसग्रास और ब्रह्मचारीको इच्छाके अनुकूल भोजन करना चाहिये । यह उनका मिताहार कहा है और अन्य लोगोंका अल्प भोजन ही मिताहार है ।

शौच ।

बाह्य और आभ्यन्तरभेदसे शौच दोप्रकारका कहा गया है । मृत्तिका और जलसे बाह्य शुद्धि होती है । आभ्यन्तरशुद्धि मनकी शुद्धिसे होती है । अध्यात्मविद्या और धर्मसाधनसे मनकी शुद्धि होती है । अध्यात्मविद्या और धर्मपिता तथा आचार्यद्वारा प्राप्त होते हैं ॥१४-१५॥

नियम वर्णन ।

तपः संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्तश्रवण, ह्री, मति, जप और व्रत ये नियम हैं ॥ १ ॥ २ ॥

तपः ।

विधानोक्तेन मार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीर शोषणम्प्राहुः स्तपसां तप उत्तमम् ॥ ३ ॥

सन्तोषः ।

यदृच्छालाभतो नित्यम्मनःसंन्तोषकारिणी ।
या धीस्तामृषयःप्राहुस्सन्तोषं सुखलक्षणम् ॥ ४ ॥

आस्तिक्यम् ।

धर्माधर्मेषु विश्वासो यस्तदास्तिक्यमुच्यते ॥ ५ ॥

दानम् ।

न्यायार्ज्जितं धनञ्चाल्पमन्यद्वा यत्प्रदीयते ।
अर्थिभ्यः श्रद्धया युक्तं दानमेतदुदाहृतम् ॥ ६ ॥

ईश्वरपूजनम् ।

यत्प्रसन्नस्वभावेन विष्णो रुद्रस्य वा पृथक् ।
यथाशक्त्यर्चनं भक्त्या चैतदीश्वरपूजनम् ॥ ७ ॥
रागाद्यपेतं हृदयं वागदुष्टाऽनृतादिभिः ।
हिंसादिरहितः काय एतदीश्वरपूजनम् ॥ ८ ॥

तप ।

शास्त्रोक्तमार्गसे कृच्छ्र चान्द्रायणादि नियम विशेषकेद्वारा शरीरके शोषणको तपस्याओंमें उत्तम तप कहा है ॥ ३ ॥

सन्तोष ।

अनायास जो कुछ प्राप्त हो उसीसे मन तृप्त हो जाय उसको विज्ञ-महर्षिगण सन्तोष कहते हैं ॥ ४ ॥

आस्तिक्य ।

वेद-शास्त्रोक्त धर्म और अधर्ममें विश्वास करना आस्तिक्य कहा जाता है ॥ ५ ॥

दान ।

न्यायसे प्राप्त किया हुआ थोड़ा भी धन अथवा और कोई वस्तु श्रद्धासे याचकको दिया जाय, उसे दान कहते हैं ॥ ६ ॥

ईश्वरपूजन ।

प्रसन्नचित होकर भक्तिसे यथाशक्ति विष्णु अथवा रुद्रकी सेवा ही

सिद्धान्तश्रवणम् ।

सिद्धान्तश्रवणम्प्रोक्तं वेदानां श्रवणं सदा ।
द्विजवत्क्षत्रियस्योक्तं सिद्धान्तश्रवणं बुधैः ॥ ९ ॥
विशाश्च केचिदिच्छन्ति शीलवृत्तवतां सताम् ।
शूद्राणाञ्च स्त्रियाश्चैव स्वधर्मस्तु तपस्विनाम् ॥१०॥
सिद्धान्तश्रवणं प्रोक्तं पुराणश्रवणं बुधैः ॥११॥

ह्रीः ।

वेदलौकिकमार्गेषु कुत्सितं कर्म यद्भवेत् ।
तस्मिन्भवति या लज्जा ह्रीस्तु सैवेति कीर्त्तिता ॥१२॥

मतिः ।

विहितेषु च सर्वेषु श्रद्धा या सा मतिर्भवेत् ॥१३॥

जपः ।

गुरुणा चोपदिष्टो हि वेदबाह्यविवर्जितः ।
विधिनोक्तेन मार्गेण मन्त्राभ्यासो जपः स्मृतः ॥१४॥

ईश्वरपूजन है। रागादिरहित हृदयदुष्टता और असत्यता रहित वचन और हिंसादि रहित शरीर रखना यह भी ईश्वर पूजन है ॥ ७-८ ॥

सिद्धान्त श्रवण ।

वेदान्तशास्त्रके श्रवण करनेको बुधगण सिद्धान्त श्रवण कहते हैं, क्षत्रियोंको भी ब्राह्मणोंके सदृश सिद्धान्त श्रवणका अधिकार है। कोई आचार्य शुद्ध चरित्र वैश्योंको भी सिद्धान्त-श्रवणका अधिकार ब्राह्मणोंके सदृश ही कहते हैं। तपस्वी स्त्री और शूद्रोंका पुराण श्रवण करना ही स्वधर्म और सिद्धान्त श्रवण है ॥ ९-१०-११ ॥

ह्री ।

वैदिक तथा लौकिक मार्गसे जो कुत्सित कर्म हैं, उसके विषयमें लज्जाको ह्री कहते हैं ॥ १२ ॥

मति ।

सब प्रकारकी विहित वस्तुओंमें जो श्रद्धा होती है, उसे मति कहते हैं ॥ १३ ॥

जप ।

श्रीगुरुदेवसे उपदेश प्राप्त करके वेदानुकूल विधि सम्मत जो मन्त्रका अभ्यास है, उसे जप कहते हैं ॥ १४ ॥

व्रतम् ।

सद्गुरोरुपदेशेनानुज्ञया वा प्रसेदुषः ।
धर्मार्थकामसिद्धयर्थमुपायग्रहणं व्रतम् ॥१५॥

स्थूलक्रियावर्णनम् ।

आसनस्थानम् ।

क्षिप्रमासाद्यते सिद्धिरासनस्यानुकूल्यतः ।
मध्ये हि लययोगस्य प्रवदन्ति पुराविदः ॥ १ ॥
कुटीरो भूमिगर्त्तस्थो दरी वा पर्वतस्य च ।
साधनस्योपयोगाय लययोगस्य कथ्यते ॥ २ ॥
न तत्र वायोः सञ्चारःस्वेच्छया किञ्च लभ्यते ।
रुद्धः स्याद्वायुसंचारो द्वारे वै पिहितेऽनिशम् ॥ ३ ॥
स्थानं तत्पावनतमं रम्यञ्चाप्यभयप्रदम् ।
सुखाकरं भवेच्चैव योगिनामिति सम्मतिः ॥ ४ ॥
एवं विधेन द्वारेण भवितव्यं न तत्र वै ।
बाह्यशब्द प्रवेशः स्यान्नापि तच्छब्दनिर्गमः ॥ ५ ॥

व्रत ।

प्रसन्नचित्त श्रीगुरुदेवके उपदेश तथा आज्ञासे धर्म; अर्थ और कामकी सिद्धिकेलिये जो उपाय विशेष किया जाता है, उसको व्रत कहते हैं ॥ १५ ॥

स्थूलक्रिया वर्णन ।

आसनस्थान ।

लययोग साधनके मध्यावस्थामें आसन स्थान अनुकूल होनेपर शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है । भूगर्तमें बनी हुई छोटी कुटी अथवा पर्वतकी गुहा लययोगके साधनमें उपयोगी होती है । लययोग उपयोगी गुहामें वायुका संचार न रहे केवल इतनाही रहे कि, जब चाहें स्वाधीनतासे वायु ले सके और जब द्वार रुद्ध हो । तब वायुका सञ्चार एकदम बन्द रहे । स्थान अति पवित्र और रम्य हो, भयरहित और स्वास्थ्यकर हो द्वारादिक ऐसे ही रहें कि, किसी प्रकारका शब्द गुहामें प्रवेश न कर

कल्याणाय भवत्येषा गुहा वै लयसाधने।
नापेक्षते गुहामेनां योगे तून्नतसाधनः ॥ ६ ॥

आसनानि।

आसनाभ्यासतः कायोऽनुकूलः साधनस्यच।
आसनानि त्रयस्त्रिंशद्धयोगे भवन्ति हि ॥ ७ ॥
आसनान्यत्र त्रीण्येव प्रोक्तानि परमर्षिभिः।
पद्मासनं स्वस्तिकं च सिद्धासनमथापि वा ॥ ८ ॥
एतान्यभ्यसनीयानि लययोगपरायणैः ॥ ९ ॥
हठयोगप्रकरणे संद्रष्टव्यानि तत्र वै।
इमानि लययोगस्य चासनानि भवन्ति हि ॥ १० ॥

मुद्रा।

योगकौशलपूर्णाया स्थूलकायपरा क्रिया।
मुद्रा निर्दिश्यते सा वै योगशास्त्रविशारदैः ॥ ११ ॥
साधने हठयोगस्य विहिता पञ्चविंशतिः।
मुद्राः महर्षिभिर्नाम हठयोगविशारदैः ॥ १२ ॥

सके और न गुहाका कोई शब्द बाहर जा सके ऐसी गुहा लययोगके साधनमें कल्याणप्रद होती है, लययोगकी उन्नत अवस्थामें गुहाकी विशेष आवश्यकता नहीं रहती ॥ १-६ ॥

आसन।

आसनके साधनकेद्वारा शरीर योगसाधनाके अनुकूल बन जाता है। हठयोगमें प्रधानतः तैंतीस आसन हैं। वे सब हठयोगमें सहायक हैं, परन्तु लययोगके आचार्योंने केवल तीन ही आसन कहा है, पद्मासन, स्वास्तिकासन और सिद्धासन इन तीनोंका पूरा अभ्यास लययोगको होना चाहिये। तैंतीस आसनोंका वर्णन हठयोगसंहितामें आया है। उसी संहितामें इन तीनों आसनोंका भी वर्णन है ॥ ७-१० ॥

मुद्रा।

योगमें कौशलपूर्ण स्थूलशरीर प्रधानक्रियाको मुद्रा कहते हैं, हठयोगके ज्ञाता महर्षियोंने पच्चीस प्रकारकी मुद्रा हठयोगकेलिये विधान किये हैं। परन्तु लययोगतत्वदर्शी महर्षियोंने लययोग सिद्धिके अर्थ

अष्टौमुद्रा विधीयन्ते लययोगे महर्षिभिः ।
ज्ञेया वै शाम्भवीमुद्रा प्रत्याहारस्य सिद्धये ॥ १३ ॥
पञ्चमुद्रा विनिर्दिष्टाः पञ्चधारणसिद्धये ।
ध्यानस्य सिद्धये शक्तिश्चालिना चाथ यानिका । १५॥

सूक्ष्मक्रिया वर्णनम् ।

प्राणायामः ।

कार्यकारणसम्बन्धात्प्राणः स्थूलो मरुत्तथा ।
अभिन्नौ वायुमुख्याया क्रिया सूक्ष्मा तु साच्यते ॥ १ ॥
अन्तर्गतौ तु सूक्ष्मायां प्राणायामस्वरोदयौ ।
वर्णितावृषिभिर्नूनं लययोगविशारदैः ॥ २ ॥
यथाप्रकृति विज्ञेया प्रणायामक्रियाष्टधा ।
तत्र सप्त बलापेक्षं हठयोगे प्रकीर्त्यते ॥ ३ ॥
सरला लययोगस्य क्रिया सर्वा विधीयते ।
बलप्रयोगो नैवाथ प्राक्तस्तज्ज्ञै महर्षिभिः ॥ ४ ।

केवल आठ मुद्राका विधान किया है, प्रत्याहार सिद्धिकेलिये शाम्भवीमुद्रा धारणासिद्धिकेलिये पञ्चधारणाकी पञ्चमुद्रा और ध्यानसिद्धिकेलिये शक्तिचालिना और योनिमुद्रा, यह हठयोग संहितामें निर्दिष्ट है ॥ ११-१४ ॥

सूक्ष्मक्रिया वर्णन

प्राणायाम ।

प्राण और स्थूलवायु कार्यकारण सम्बन्धसे एक ही है, सुतराम् वायु प्रधानक्रियाका सूक्ष्मक्रिया कहते हैं । प्राणायाम और स्वरोदय सूक्ष्मक्रियाके अन्तर्गत है, ऐसा लययोगाचार्य महर्षियोंने वर्णन किया है । प्राणायामक्रिया अष्टविध प्रकृतिके अनुसार आठ है । जिनमें सात क्रियाबल सापेक्ष होनेके कारण हठयोगमें वर्णित है । लययोगाचार्योंने बल प्रयोगकी आवश्यकता नहीं समझी । लययोगकी सब क्रियायें सहज हैं । लययोगके उपयोगी प्राणायामका केवलीप्राणायाम कहते हैं । इसकी क्रिया गुरूपदेश गम्य होनेपर भी जगद्धितार्थ वर्णन किया

लययोगोपयोगाय प्राणायामस्तु केवली ।
प्रोच्यते तीर्णसंसारसागरैः परमर्षिभिः ॥ ५ ॥
गुरूपदेशगम्यापि प्राणायामक्रियाऽखिला ।
यथावद्वर्ण्यते चात्र जगच्छ्रेयो विधित्सया ॥ ६ ॥
स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चाभ्यन्तरे भ्रुवोः ।
प्राणायामौ समौ कार्यौ नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ ७ ॥
यः साधकः केवलकुम्भकस्याभ्यासं करोतीह स एव योगी ।
न विद्यते किञ्चिदसाध्यमत्र धन्यस्य योगिप्रवरस्य तस्य ॥८॥
प्राणयामे साधितेऽस्मिन् साधकैस्त्वनुभूयते ।
प्रत्याहारो धारणा च समाधिर्ध्यानमेव च ॥ ९ ॥

स्वरोदय वर्णनम् ।

प्राणामरुन्मनश्चैते कार्यकारणरूपतः ।
अभिन्नाश्च जिते वायौ जिताः प्राणा मनस्तथा ॥१०॥
प्राणवायु विनिर्जित्य महाप्राणमनोजयः ।
तत्त्वज्ञानोपलब्धिश्चेत्युच्यते हि स्वरोदयः ॥११॥

जाता है। इन्द्रियोंके विषयोंको मनसे हटाकर भ्रूयुगलके मध्यमें चक्षुस्थिर करके नासिका और आभ्यन्तरचारी प्राण और अपानको समभावमें स्थित करनेसे केवली प्राणायामका साधन होता है। जो साधक केवली प्राणायामका साधन करते हैं, वही यथार्थमें योगी है ॥ ११-८ ॥

केवली प्राणायामके साधनसे साधकको इस संसारमें कुछ भी असाध्य नहीं रहता है। इस प्राणायामको साधन करते हुए तत्काल क्रमशः प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि भूमियोंका अनुभव हो सकता है ॥ ९ ॥

स्वरोदय वर्णन ।

प्राण, वायु और मन ये तीनों कार्यकारण सम्बन्धसे एक ही होनेके कारण प्राणवायु जयद्वारा महाप्राणजय और मनजय हो सकता है, प्राणवायुको जय करके महाप्राणजय, मनोजय और तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेको स्वरोदय कहते है। सूक्ष्मशक्तिके वैचित्र्यके कारण स्वरोदयकी

वैचित्र्यात्सूक्ष्मशक्तेर्हि स्वरोदयक्रियाफले ।
अनन्तेऽपि हितार्थाय योगिनां किञ्चिदुच्यते ॥१२॥

स्वरज्ञानात्परं मित्रं स्वरज्ञानात्परं धनम् ।
स्वरज्ञानात्परं गुह्यं न वा दृष्टं न वा श्रुतम् ॥१३॥

शत्रुं हन्यात्स्वरबलैस्तथा मित्रसमागमः ।
लक्ष्मीप्राप्तिः स्वरबलैः कीर्त्तिस्स्वरबलैस्तथा ॥१४॥

कन्याप्राप्तिःस्वरबलैस्तद्बलै राजदर्शनम् ।
स्वरबलैर्देवतासिद्धिस्तद्बलैः क्षितिपो वशः ।१५॥

स्वरैः संलभ्यते देशो भोज्यं स्वरबलैस्तथा ।
लघुदीर्घं स्वरबलैर्मलश्चैव निवार्यते ॥१६॥

सर्वशास्त्रपुराणादिस्मृतिवेदाङ्गपूर्वकम् ।
स्वरज्ञानात्परं मित्रं नास्ति किञ्चिन्महीतले ॥१७॥

इदं स्वरोदयं शास्त्रं सर्वशास्त्रोत्तमोत्तमम् ।
आत्मघटप्रकाशार्थं प्रदीपकलिकोपमम् ॥१८॥

क्रिया और फल अनन्त है, तथापि योगियोंके दिग्दशनार्थ कुछ कहा जाता है। स्वरज्ञानकी अपेक्षा श्रेष्ठ बन्धु, स्वरज्ञानकी अपेक्षा श्रेष्ठधन और स्वरज्ञानकी अपेक्षा परम गोपनीय पदार्थ कोई भी देखने और सुननेमें नहीं आता। शत्रुविनाश, बन्धुसमागम, लक्ष्मीप्राप्ति कीर्ति-सञ्चय, कन्य प्राप्ति, राजदर्शन, राजवशीकरण इत्यादि सभी कार्य स्वरविज्ञानके बलसे सिद्ध हो सकते हैं॥ १०-१६॥

स्वरसे पुराग, स्मृति, वेदाङ्ग और तन्त्र आदि सब शास्त्र उत्पन्न हुए हैं, स्वरज्ञानकी अपेक्षा इस जगत्में और कोई भी मित्र नहीं है। यह स्वरोदय शास्त्र सबशास्त्रोंको अपेक्षा श्रेष्ठतम है, गृह अवलोकन करनेके निमित्त जिसप्रकार दीपशिखाका प्रयोजन होता है, उसीप्रकार आत्मप्रकाशके निमित्त स्वरोदयशास्त्र जाननेकी आवश्यकता होती है॥ १०-१८॥

वायुभेदवर्णनम् ।

प्राणोऽपानः समानश्चोदानो व्यानस्तथैव च ।
नागः कूर्म्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥१९॥
हृदि प्राणो वहेन्नित्यमपानो गुदामण्डले ।
समानो नाभिदेशे स्यादुदानः कण्ठमध्यगः ॥२०॥
व्यानो व्यापी शरीरेषु प्रधानाः पञ्चवायवः ।
प्राणाद्याः पञ्चविख्याता नागाद्याः पञ्चवायवः ॥२१॥
तेषामपि च पञ्चानां स्थानानि च वदाम्यहम् ।
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ॥२२॥
कृकरः क्षुत्कृते ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ।
न जहाति मृते क्वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः ॥२३॥
एते नाडीषु सर्वासु भ्रमन्ते जीवरूपिणः ।
प्रकटप्राणसञ्चारं लक्षयेद्देहमध्यतः ॥२४॥
इडापिङ्गला सुषुम्नानाडीभिस्तिसृभिर्बुधः ॥२५॥
अनेन लक्षयेद्योगी चैकचित्तः समाहितः ।
सर्वमेव विजानीयान्मार्गे तच्चन्द्रसूर्ययोः ॥२६॥

वायुभेद वर्णन ।

शरीरस्थ वायुके दश भेद हैं यथा प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय, जिनमेंसे हृदयमें प्राण और गुदामण्डलमें अपान, नाभिमें समान, कण्ठमें उदान और सारे शरीरमें व्यानवायु नित्य प्रवाहित होता है। अब और पाँच वायुके स्थान कहे जाते हैं, यथा उद्गारमें नागवायु, चक्षुके उन्मीलनमें कूर्मवायु, क्षुत्कारमें कृकरवायु, विजृम्भणमें देवदत्तवायु और सर्व शरीरमें धनञ्जय वायु अधिकार किये हुए हैं। एकमात्र धनञ्जयवायुही जीवका देह-त्याग होनेपर भी शरीर त्याग नहीं करता जीवगणके जीवन स्वरूपी ये सब वायु नाड़ियोंमें भ्रमण कर रहे हैं। पिङ्गला, इड़ा और सुषुम्णा इन तीन नाड़ियोंद्वारा स्वरोदय तत्ववेत्ता पण्डितगण शरीरमें भ्रमण करते हुए इन वायुकी क्रियाओंका अनुभव किया करते हैं ॥ १९-२५ ॥

इसकेद्वारा योगी एकाग्रचित्त और समाधियुक्त होकर चन्द्र और

जीवेन गृह्यते जीवो जीवो जीवस्य दीयते ।
जीवस्थाने गतो जीवो बलाज्जीवान्तवश्यकृत् ॥२७॥
चन्द्रं पिबति सूर्येण सूर्यं पिबति चन्द्रतः ।
अन्योन्यं कालभावेन जीवेदाचन्द्रतारकम् ॥२८॥
एतज्जानाति यो योगी एतत्पठति नित्यशः ।
सर्वदुःख विनिर्मुक्तो लभते वाञ्छितं फलम् ॥२९॥

तत्वविचारः ।

पञ्चतत्त्वाद्भवेत्सृष्टिः तत्त्वे तत्त्वं विलीयते ।
पञ्चतत्त्वं परं तत्त्वं तत्त्वातीतं निरञ्जनम् ॥३०॥
तत्त्वानां नाम विज्ञेयं सिद्धियोगेन योगिनाम् ।
भूतानां दुष्टचिह्नानि जानन्ति हि स्वरोत्तमाः ॥३१॥
पृथिव्यापस्तथा तेजोवायुराकाशमेव च ।
पञ्चभूतात्मकं सर्वं यो जानाति स पूजितः ॥३२॥

सूर्य पथ अर्थात् इड़ा और पिङ्गलाके वहन कालको लक्ष्य करके सारे पदार्थोंको जान सकते हैं। जो साधक इड़ा नाड़ोको पिङ्गलामें और पिङ्गला नाड़ोको इड़ामें ला सकते हैं और चन्द्ररश्मिद्वारा सूर्यरश्मि और सूर्यरश्मिद्वारा चन्द्ररश्मि ग्रहण कर सकते हैं, वे योगी जबतक चन्द्र और तारागणोंका अस्तित्व है, तबतक जीवित रह सकते हैं। जो योगी नाड़ी सञ्चालन क्रिया जानते हैं औरस्वरज्ञान शास्त्रका नित्य अध्ययन करते हैं, वे सबप्रकारके दुःख अर्थात् त्रितापसे बच जाते हैं और अभिलषित फलकी प्राप्ति कर सकते हैं ॥२६-२९॥

तत्वविचार वर्णन

पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँचों तत्वोंसे समस्त, ब्रह्माण्डकी सृष्टि हुई है और प्रलयकालमें इन्हीं पांचो तत्वों में यावन्मात्र पदार्थलयको प्राप्त हो जाते हैं। इन पांचों तत्वोंके परे जो परमतत्व है वे हो निरञ्जन ब्रह्म हैं। स्वरशास्त्रवेत्ता योगी तत्वसिद्धिसे तत्वोंके नाम और भूतोके भले बुरे चिह्न जान सकते हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पञ्चभूतोंसे ही यह संसार उत्पन्न हुआ है। इसकारण इन तत्वोंको जाननेवाला योगी ही जगत्में पूजनीय है ॥ ३०-३२ ॥

सर्वंल्लोकेषु जीवानां न देहे भिन्नतत्वकम् ।
भूर्लोकात्सत्य पर्यन्तं नाड़ीभेदः पृथक् पृथक् ॥३३॥
वामे वा दक्षिणे वापि ह्युदयाः पञ्च कीर्त्तिताः ।
अष्टधा तत्त्वविज्ञानं शृणु वक्ष्यामि सुन्दरि ॥३४॥
प्रथमे तत्त्वसंख्यायां द्वितीये श्वाससन्धिषु ।
तृतीये स्वरचिह्नानि चतुर्थे स्थानमेव च ॥३५॥
पञ्चमे तस्य वर्णश्च षष्ठे तु प्राणा एव च ।
सप्तमे स्वादुसंयुक्तिरष्टमे गतिलक्षणम् ॥३६।
एवमष्टविधं प्राणं विषुवन्तं चराचरम् ।
स्वरात्परतरं देवि ! नान्यदस्त्यम्बुजानने ॥३७॥
निरीक्षितव्यं यत्नेन यदा प्रत्यूषकालतः ।
कालस्य वञ्चनार्थाय कर्म कुर्वन्ति योगिनः ॥३८॥
श्रुत्योरङ्गुष्ठकौ मध्याङ्गुलौ नासापुटद्वये ।
वदनप्रान्तयोरन्ते तर्जन्यौ तु दृगन्तयोः ॥३९॥
अस्यान्तरं पार्थिवादि तत्त्वज्ञानं भवेत्क्रमात् ।
पीतश्वेतारुणश्यामैर्विन्दुभिर्निरुपाधिकम् ॥४०॥

भूलोकसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त जितने जीव हैं, उन सबके शरीर पञ्चतत्त्व निर्मित हैं, वामनासा अथवा दक्षिणनासापुटमें इन पांचों तत्वोंका उदय हुआ करता है, तत्वज्ञान करनेके आठ उपाय हैं। प्रथम् तत्वोंको संख्या, द्वितीयश्वासोंकी सन्धि तृतीय स्वरोंके चिन्ह, चतुर्थ स्वरोंके स्थान, पञ्चम तत्वोंके वर्ण, षष्ठ उनके परिणाम, सप्तम उनके स्वाद और अष्टम उनकी गति ये अष्टविध तत्वोंके लक्षण हैं। स्वर शास्त्रकी अपेक्षा और श्रेष्ठशास्त्र कोई भी नहीं है। योगीगणको उचित है कि, प्रभातकालमें इन तत्वोंके लक्षणोंका यत्नपूर्वक दर्शन करके तब कर्म आरम्भ करें, जिसकेद्वारा वे कालका जय कर सकेंगे, दोनों हाथोंके दोनों बद्धाङ्गुष्ठद्वारा दोनों कर्ण, दोनों मध्यमाङ्गुलिद्वारा दोनों नासापुट, दोनों अनामिका और दोनों कनिष्ठाङ्गुलिद्वारा मुख और दोनों तर्ज्जनीद्वारा चक्षु बन्द करके तत्त्व दर्शन करना उचित है।

दर्पणेन समालोक्य श्वासं तत्र विनिक्षिपेत् ।
आकारैस्तु विजानीयात् तत्त्वभेदं विचक्षणः ॥४१॥
चतुरस्रं चार्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्त्तुलं स्मृतम् ।
बिन्दुभिस्तु नभो ज्ञेयमाकारैस्तत्त्वलक्षणम् ॥४२॥
मध्ये पृथ्वी ह्यधश्चापश्चोर्ध्वं वहति चानलः ।
तिर्यग्वायुप्रचारश्च नभो वहति संक्रमे ॥४३॥
माहेयं मधुरं स्वादु कषायं जलमेव च ।
तिक्तं तेजश्च वाय्वम्लमाकाशं कटुकं तथा ॥४४॥
अष्टाङ्गुलं वहेद्वायुरनलश्चतुरङ्गुलम् ।
द्वादशाङ्गुलमाहेयं षोडशाङ्गुलवारुणम् ॥४५॥

यदि पीतवर्ण दिखायी पड़े तो पृथिवी तत्व, जो श्वेतवर्ण दिखायी पड़ेतो जलतत्व, जो रक्त वर्ण दिखायो पड़े तो अग्नितत्व, श्यामवर्ण दिखायी पड़े तो वायुतत्व और बिन्दु-बिन्दु विविधवर्ण दिखायी पड़े तो आकाशतत्व जानना उचित है॥ ३३-४०॥

दर्पणके ऊपर श्वास डालनेसे उसपर जो वाष्प लगेगा वह यदि चतुष्कोण हो तो पृथ्वीतत्त्व, यदि अर्द्धचन्द्राकृति हो, तो जलतत्व, यदि त्रिकोण हो, तो अग्नितत्व, यदि गोल हो, तो वायुतत्व और यदि बिन्दु बिन्दुवत हो, तो आकाशतत्व समझना उचित है। नासापुटके मध्य भागोंमें होकर यदि श्वास प्रवाहित हो तो पृथ्वीतत्व, यदि अधोभाग होकर श्वास प्रवाहित हो, तो जलतत्व यदि ऊर्ध्वभाग होकर श्वास प्रवाहित हो,तो अग्नितत्व, यदि पार्श्व भाग होकर वायु प्रवाहित हो, तो वायुतत्व, यदि नासापुटके आभ्यन्तर घूमता हुआ श्वास प्रवाहित हो, तो आकाशतत्वका उदय ऐसा समझना उचित है। पृथ्वीतत्वके उदयमें मिष्टरस, जलतत्वके उदयमें मिष्ट और कषायरस, अग्नितत्वके उदयमें तिक्तरस. वायुतत्वके उदयमें अम्लरस और आकाशतत्वके उदयमें कटुरसका अनुभव होता है, ऐसा जानना उचित है। श्वास निकलते समय अङ्गुलिद्वारा मापनेपर यदि वायुवेग आठ अङ्गुलिदीर्घ हो तो वायुतत्व,चार अङ्गुलि हो तो अग्नितत्व,द्वादश अङ्गुलि हो तो पृथिवी-तत्व, और षोडश अङ्गुलि हो तो जलतत्वका उदय समझना उचित है।

आपः श्वेताः क्षितिः पीता रक्तवर्णो हुताशनः ।
मारुतोनील जीमूत आकाशं भूरिवर्णकम् ॥४६॥
स्कन्धदेशे स्थितो वह्निर्नाभिमूले प्रभञ्जनः ।
जानुदेशे महीतोयं पादान्ते मस्तके नभः ॥४७॥
ऊर्द्ध्वं मृत्युरधः शान्तिस्तिर्यगुच्चाटनं तथा ।
मध्येस्तम्भं विजानीयान्नभः सर्वत्र मध्यमम् ॥४८॥
पृथिव्यां स्थिरकर्माणि चरकर्माणि वारुणे ।
तेजसां समकार्याणि मारणोच्चाटनेऽनिले ॥४९॥
व्योम्नि किञ्चिन्न कर्त्तव्यमभ्यसेद्योगसेवया ।
शून्यता सर्वकार्येषु नात्र कार्या विचारणा ॥५०॥
पृथ्वीजलाभ्यां सिद्धिः स्यान्मृत्युर्वह्नौ क्षयोऽनिले ।
नभसे निष्फलं सर्वं ज्ञातव्यं तत्ववेदिभिः ॥५१॥
चिरलाभः क्षितौ ज्ञेयस्तत्क्षणस्तोयतत्त्वतः ।
हानिःस्याद्वह्निवाताभ्यां नभसो निष्फलं भवेत् ॥५२॥

उचित है। जलतत्त्वका वर्णश्वेत, पृथिवीतत्त्वका पीत, अग्नितत्त्वका रक्त, वायुतत्त्वका नीलमेघवत् और आकाशतत्त्वका नानाविध वर्ण हुआ करता है ॥४१-४६॥

स्कन्धदेशमें अग्नितत्त्व, नाभिमूलमें वायुतत्त्व, जानुमें पृथ्वीतत्त्व, चरणमें जलतत्त्व और मस्तकमें आकाशतत्त्व अवस्थित है। अग्नितत्त्वके उदयमें मारण, जलतत्त्वके उदयमें शान्तिकरण, वायुतत्त्वके उदयमें उच्चाटन, पृथ्वीतत्त्वके उदयमें स्तम्भन और आकाशतत्त्वके उदयमें मध्यम कार्य करना उचित है। पृथ्वीतत्त्वके उदयमें स्थिरकार्य, जलतत्त्वके उदयमें चरकार्य, अग्नितत्त्वके उदयमें क्रूर कार्य वायुतत्त्वके उदयमें मारणउच्चाटनादिकार्य और आकाशतत्वके उदयमें कुछ भी करना उचित नहीं है। परन्तु इस तत्त्वके उदयमें योगसाधन करना उचित है। पृथ्वी और जलतत्वके उदयमें कोई काम करनेसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है अग्नितत्त्वके उदयमें मृत्यु होती है। वायुतत्त्वके उदयमें क्षय होता है और आकाशतत्त्वके उदयमें सर्ववैषयिक कार्योंमें हानि होती है, ऐसा तत्वज्ञ मनुष्योंको स्मरण रखना उचित है। पृथ्वीतत्त्वके

यः समीरः समरसः सर्वतत्त्वगुणावहः ।
अम्बरं तं विजानीयाद् योगिनां योगदायकम् ॥५३॥
वर्णाकारं स्वादुवाहमव्यक्तं सर्वगामि च ।
मोक्षदं व्योमतत्त्वं हि सर्वकार्येषु निष्फलम् ॥ ५४ ॥
आपः पूर्वे पश्चिमे हि पृथ्वी तेजश्च दक्षिणे ।
वायुरुत्तरदिग्भागे मध्यकोणे गतं नभः ॥ ५५ ॥
चन्द्रे पृथ्वी जले स्यातां सूर्ये चाग्निर्यदा भवेत् ।
तदा सिद्धिर्न सन्देहः सौम्यासौम्येषु कर्मसु ॥ ५६ ॥
जीवितव्ये जये लाभे कृष्यां च धनकर्षणे ।
मन्त्रार्थे युद्धप्रश्ने च गमनागमने तथा ॥ ५७ ॥
आयाति वारुणे तत्त्वे तत्रस्थोऽपि शुभं क्षितौ ।
प्रयाति वायुतोऽन्यत्र हानिर्मृत्युर्नभोऽनले ॥ ५८ ॥

उदयमें विलम्बसे लाभ, जलतत्त्वके उदयमें तुरत लाभ, वह्नि और वायुतत्त्वके उदयमें हानि और आकाशतत्त्वके उदयमें निष्फलता हुआ करती है। आकाशतत्त्वमें पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन सब तत्त्वोंका गुण वर्त्तमान रहता है। इसकारण इसके उदयकालमें योगियोंको योगसिद्धि प्राप्त हुआ करती है ॥४७-५३॥

आकाशतत्त्व अव्यक्त है और नासापुटके सब दिशाओंका स्पर्श करताहुआ बहिर्गत होता है, यह तत्त्व मोक्षकार्यमें फलदायक है, परन्तु वैषयिक कार्योंमें विफलता देनेवाला है। पूर्वदिशाका अधिपति जलतत्त्व, पश्चिमका पृथिवीतत्त्व, दक्षिणका अग्नितत्त्व, उत्तरका वायुतत्त्व और अग्निवायु नैर्ऋत्य ईशान, ऊर्ध्व और अधः इन दिशाओंका अधिपति आकाशतत्त्व है। इड़ा अर्थात् वामनासापुटमें वायु बहते समय यदि पृथ्वी और जलतत्त्व हो और पिङ्गला अर्थात् दक्षिणस्वरमें यदि अग्नितत्त्व हो तो शुभ और क्रूरकर्ममें निश्चय करके सिद्धि प्राप्त होगी। जीवित रहना, विजय, लाभ कृषिकार्य, धनोपार्जन, मन्त्र, अर्थ, युद्धका प्रश्न, गमन और आगमन इत्यादि विषय समूह पञ्चतत्त्वके निर्णयसे कहे जा सकते हैं। जलतत्त्वके उदयमें प्रश्नकरनेसे आगन्तुक आवेगा, पृथिवीतत्त्वमें आगन्तुक उपस्थित है और शुभ समझने योग्य

पृथिव्यां मूलचिन्ता स्याज्जीवस्य जलवातयोः ।
तेजसा धातुचिन्ता स्याच्छून्यमाकाशतो वदेत् ॥ ५९ ॥
पृथिव्यां बहुपादाः स्युर्द्विपदास्तोयवायुतः ।
तेजसा च चतुष्पादा नभसा पादवर्जिताः ॥ ६० ॥
कुजो वह्नी रविः पृथ्वी शौरिरापः प्रकीर्तिताः ।
वायुस्थानस्थितो राहुर्दशरन्ध्रप्रवाहकः ॥ ६१ ॥
जलं चन्द्रो बुधः पृथ्वी गुरुर्वातः सितोऽनलः ।
वामनाड्यां स्थिताः सर्वे सर्वकार्येषु निश्चिताः ॥ ६२ ॥
तुष्टिः पुष्टी रतिः क्रीडा जयो हास्यं धराजले ।
तेजो वायुश्च सुप्ताक्षः ज्वरकम्पः प्रवासिनः ॥ ६३ ॥
गतायुर्मृत्युराकाशे चन्द्रावस्थाः प्रकीर्तिताः ।
द्वादशैताः प्रयत्नेन ज्ञातव्या देशिकोत्तमैः ॥ ६४ ॥
पूर्वस्यां पश्चिमे याम्ये उत्तरायां यथाक्रमम् ।

है । वायुतत्त्वमें और स्थानमें जाना समझा जाय और अग्नि व आकाशतत्त्वमें हानि और मृत्यु समझना उचित है । पृथ्वीतत्वके उदयमें मूलका प्रश्न, जल और वायुतत्त्वमें जीवका प्रश्न, अग्नितत्त्वमें धातुका प्रश्न और आकाशतत्त्वमें शून्य समझना उचित है । पृथ्वीतत्त्वमें बहुपद, जल और वायुतत्त्वमें द्विपद, अग्नितत्त्वमें चतुष्पद और आकाशतत्त्वमें पदहीन जीव समझना उचित है ।। ५०—६० ॥

पिङ्गलानाड़ी अर्थात् दक्षिणनासापुटमें श्वास बहते समय अग्नितत्त्वका अधिपति मङ्गल, पृथ्वीतत्वका रवि, जलतत्वका शनि और वायुतत्वका राहुग्रह समझना चाहिये । परन्तु इड़ा अर्थात् वामनासामें वायु बहते समय जलतत्त्वका चन्द्र, पृथ्वीतत्त्वका बुध, वायुतत्त्वका बृहस्पति, अग्नितत्त्वका अधिपति शुक्रग्रह समझना उचित है । ये सबग्रह शुभकर हैं । इड़ा नाड़ीमें वायु बहते समय पृथिवी और जलतत्त्वका उदय होनेसे प्रवासी मनुष्योंके प्रश्नमें संतोष, पोषण, रति, केलि, जय और हास्य समझा जायगा । अग्नि और वायुतत्त्व होनेपर निद्रा, जय और कम्प और आकाशतत्त्व होनेपर आयुशेष और मृत्यु समझा जायगा । स्वरशास्त्रवेत्तागणद्वारा द्वादश ये विषय ज्ञातव्य हैं ।

पृथिव्यादीनि भूतानि बलिष्ठानि विनिर्दिशेत् ॥ ६५ ॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेवच ।
पञ्चभूतात्मकं देहं ज्ञातव्यञ्च वरानने ॥ ६६ ॥
अस्थिमांसं त्वचानाड़ीरोमञ्चैव तु पञ्चमम् ।
पृथ्वी पञ्चगुणोपेता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ ६७ ॥
शुक्रशोणितमज्जाञ्च लालामूत्रञ्च पञ्चमम् ।
आपः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ ६८ ॥
क्षुधातृष्णा तथा निद्रा शान्तिरालस्यमेव च ।
तेजः पञ्चगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ ६९ ॥
धारणं चालनं क्षेप्यं सङ्कोचनप्रसारणे ।
वायोः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ ७० ॥
रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहश्च पञ्चमः ।
नभः पञ्च गुणम्प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥ ७१ ॥
पृथ्वी पलानि पञ्चाशच्चत्वारिंशदपस्तथा ।
तेजस्त्रिंशद्विजानीयाद्वायोर्विंशतिदिङ्नभः ॥ ७२ ॥

पृथ्वीतत्त्वमें पूर्वदिशा, जलतत्त्वमें पश्चिमदिशा, अग्नितत्त्वमें दक्षिण-दिशा और वायुतत्त्वमें उत्तरदिशा समझना उचित है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांचभूतोंसे देह बना हुआ है। अस्थि, मांस, चर्म, नाड़ी और रोम ये पृथ्वीतत्त्वके पांचगुण ब्रह्मज्ञानियोंने कहे हैं। शुक्र, रक्त, मज्जा, लाला और मूत्र जलतत्त्वके ये पांचगुण ज्ञानियोंने कहे हैं। क्षुधा, पिपासा, निद्रा, शान्ति और आलस्य अग्नि-तत्त्वके ये पांचगुण ज्ञानवानोंने कहे हैं॥ ६१–६९ ॥

धारण, चालन, क्षेपण, संकोचन ओर विस्तारण वायुतत्त्व के ये पांचगुण ज्ञानीमनुष्योंने कहे हैं। राग, हिंसा, लज्जा, भय और मोह आकाशतत्त्वके ये पांचगुण बुद्धिमानोंने कहे हैं। वाम अथवा दक्षिण-नासापुटमें श्वास उदित होकर अढ़ाई घड़ीतक अवस्थित रहता है। इस अढ़ाई घड़ीके बीचमें पृथिवी, जल अग्नि, वायु और आकाशतत्त्वका उदय हुआ करता है। उदय होनेकी रीति यथा-पृथिवीतत्त्व उदय होकर पचास ५० पल,, जलतत्त्व चालीस ४० पल अग्नितत्त्व ३० पल,

पार्थिवे चिरकालेन लाभश्चाप्सु क्षणाद्भवेत् ।
जायते पवनात्स्वल्पः सिद्धाऽप्यग्नौ विनश्यति ॥ ७३ ॥
वह्निवाय्वोः कृते प्रश्ने लाभालाभौ वदेद्बुधः ।
परतो वारुणे लाभः स्थिरेण च वसुन्धरे ।
ज्ञातव्यं जीवने शून्यं सिद्धो व्योम्नि विनश्यति ॥ ७४ ॥
पृथ्व्याः पञ्च अपां वेदा गुणास्तेजो द्विवायुतः ।
नभ एक गुणश्चैव तत्त्वज्ञानमिदं भवेत् ॥ ७५ ॥
फूत्कारकृत्प्रस्फुटिता विदीर्णा पतिताधरा ।
ददाति सर्वकार्येषु अवस्थासदृशं फलम् ॥ ७६ ॥
जन्मान्तरीयसंस्कारात्प्रसादादथवा गुरोः ।
केषाञ्चिज्जायते तत्त्वे वासना विमलात्मनाम् । ७७ ॥
भरणी कृत्तिका पुष्या महापूर्वा च फाल्गुनी ।
पूर्वाभाद्रपदा स्वातिस्तेजस्तत्त्वमिति प्रिये ॥ ७८ ॥

और आकाशतत्त्व १० पल रहा करता है। पृथ्वीतत्त्वके समयमें प्रश्न होनेसे विलम्बसे लाभ, वायुतत्त्वके समयमें अल्पलाभ और अग्नि-तत्त्व ३० पल, वायुतत्त्व २० पल और आकाशतत्त्व १० पल रहा करता है। पृथ्वीतत्त्वके समयमें प्राप्त लाभ भी नाशको प्राप्त हो जाता है। जलतत्त्वके उदय समय होनेसे दूसरेके निकटसे लाभ हुआ करता है। पृथ्वीतत्त्वके उदय समय निश्चित लाभ होता है, वायुतत्त्वके उदय समय लाभ नहीं होता है और आकाशतत्त्वके उदयके समय लाभकी सम्भावना रहनेपर भी नष्ट हो जाता है। पृथिवीतत्त्वके दो गुण और आकाशतत्त्वका केवल एक ही गुण है ॥ ७०-७५ ॥

यदि किसी कारणसे इन सब तत्त्वोंका रङ्ग अच्छे प्रकारसे दिखायी न दे, तो एक और प्रकारका उपाय हो सकता है। अर्थात् मुखमें जलभरकर फूत्कार द्वारा जलको ऊपरकीओर उड़ानेसे जब वह जल नीचेकीओर गिरने लगेगा, तब उसमें नानाप्रकारके वर्ण दिखायी देंगे, शरीरमें उस समय जिस तत्त्वकी अधिकता होगी, उसी तत्त्वका रङ्ग भी उस जलमें अधिक दिखायी देगा और इस रीतिसे तत्त्व अनुसन्धान होनेसे फल ज्ञान हो सकता है। पूर्वजन्मके संस्कारसे

विशाखोत्तरफाल्गुन्यौ हस्तश्चित्रापुनर्वसू ।
अश्विनीमृगशीर्षाच वायोस्तत्त्वमुदाहृतम् ॥ ७९ ॥
पूर्वाषाढ़ा तथाश्लेषा मूलमार्द्रा च रोहिणी ।
उत्तराभाद्रपदा तोयतत्वं शतभिषा प्रिये ॥ ८० ॥
धनिष्ठा रेवती ज्येष्ठाऽनुराधाश्रवणस्तथा ।
अभिजिच्चोत्तराषाढ़ा पृथ्वीतत्त्वमुदाहृतम् ॥ ८१ ॥
तत्त्वज्ञानीनरो यत्र धनं नास्ति ततः परम् ।
तत्वज्ञानेन गमयेदनायासफलं भवेत् ॥ ८२ ॥

नाड़ीभेदाः ।

ये कुर्वन्ति सदामर्त्या अभ्यासश्चन्द्रसूर्ययोः ।
अतीतानागतज्ञानन्तेषां हस्तगतं भवेत् ॥ ८३ ॥
स्थिरकर्मण्यलंकारे दूराध्वगमने तथा ।
आश्रमे हर्म्यप्रासादे वस्तूनां संग्रहेऽपिच ॥ ८४ ॥

अथवा गुरुकी कृपासे किसी-किसी विशुद्ध अन्तःकरणपुरुषको स्वरतत्त्व साधन बहुतशीघ्रही प्राप्त हो सकता है। भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफागुनी, पूर्वाभाद्रपद और स्वाति, ये नक्षत्र अग्नि-तत्त्वके अधिपति हैं। विशाखा, उत्तराफागुल्नी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी और मृगशिरा ये नक्षत्र समूह वायुतत्त्वके अधिपति हैं। पूर्वाषाढ़ा, आश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रोहिणी, उत्तराभाद्रपद और शत-भिषा, ये सबनक्षत्र जलतत्त्वके अधिपति हैं। धनिष्ठा, रेवती, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित् और उत्तराषाढा, ये नक्षत्रगण पृथ्वीतत्वके अधिपति समझे जाते हैं। तत्वज्ञानी पण्डितगणकी अपेक्षा जगत्में दुर्लभ और कुछ नहीं है। तत्वज्ञानकेद्वारा सकलप्रकार के अभीष्ट पदार्थ विना परिश्रमके प्राप्त हुआ करते हैं और इससे जिस कार्यमें परिश्रम किया जाय, उसीमें सिद्धिकी प्राप्ति हो सकती है ॥ ७६-८२ ॥

जो साधक सर्वदा चन्द्र और सूर्य अर्थात् इड़ा और पिङ्गलाका अभ्यास करते हैं, भूत और भविष्यत् कालज्ञान उनके करतलस्थ रहता है। स्थिरकार्य करना, अलङ्कार धारण, दूरपथगमन, आश्रमप्रवेश, अट्टालिकानिर्माण, राजमन्दिर निर्माण, द्रव्यसंग्रह करना कूपतड़ागादि

वापीकूपतड़ागादिप्रतिष्ठा स्तम्भदेवयोः ।
यात्रा दाने विवाहे च वस्त्रालङ्कारभूषणे ॥ ८५ ॥
शान्तिकं पौष्टिकश्चैव दिव्यौषधिरसायने ।
स्वस्वामिदर्शनं मैत्रे वाणिज्ये धनसंग्रहे ॥ ८६ ॥
गृहप्रवेशे सेवायां कृष्यां बीजादिवापके ।
शुभकर्मणि सन्धौ च निर्गमे च शुभः शशी ॥८७॥

पिङ्गला ।

कठिनक्रूरविद्यानां पठने पाठने तथा ।
शास्त्राभ्यासे च गमने मृगया पशुविक्रये ॥ ८८ ॥
गीत्यभ्यासे तन्त्रयन्त्रे दुर्गपर्वतरोहणे ।
द्यूते चौर्ये गजाश्वादिरथवाहनसाधने ॥ ८९ ॥
व्यायामे मारणोच्चाटे षट् कर्मादिकसाधने ।
यक्षिणीयक्षवेतालविश्वभूतादिसंग्रहे ॥ ९० ॥

जलाशयखनन, देवस्तम्भादिप्रतिष्ठा, यात्राकरना, दानकरना, विवाहकरना, वस्त्रपरिधान, भूषणधारणकरना, शान्तिकर्म, पुष्टिजनककार्यकरना, महौषधिसेवन, रसायनसेवनकरना, स्वामिदर्शन, बन्धुत्व करना, स्वामिदर्शन, बन्धुत्व करना, वाणिज्य करना, अर्थसंग्रह, गृहप्रवेश सेवाकार्य कृषिकर्म बीजवपन करना और नाना शुभकर्म, सन्धिस्थापन और वहिर्गमन, ये सब कार्य इड़ा नाड़ी अर्थात् वामनासापुटमें वायु बहते समय करनेसे मङ्गलदायक हुआ करते हैं ॥ ८३-८७ ॥

कठिन और क्रूर विद्या अध्ययन और अध्यापन करना, शास्त्राभ्यास कराना, पशुविक्रयकरना, मृगयाकरना, गीत्यभ्यासकरना, यन्त्र तन्त्रकरना, दुर्ग अथवा पर्वत आरोहणकरना, द्यूतक्रीडा अथवा चौर्यकार्यहस्तिघोटक रथ आदि यानमें आरोहण अभ्यासकरना, व्यायाम, मारण उच्चाटन, स्तम्भन आदि षट्कर्म, यक्षिणी वेताल भूत प्रेतादि सिद्ध, नदीपारहोना, औषधिसेवन, लिपिलेखन, मारण, मोहन, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चारण वशीकरण, प्रेरणा, आकर्षण, क्षोभण आदि कार्यकरना, दानकरना, क्रय-विक्रयकरना, अस्त्रधारणकरके युद्धकरना, भोगकरना, राजदर्शनकरना, स्नानकरना, भोजनकरना और नाना

नदीजलौघतरणे भेषजे लिपिलेखने ।
मारणे मोहने स्तम्भे विद्वेषोच्चाटने वशे ॥ ९१ ॥
खड्गहस्ते वैरयुद्धे भोगे वा राजदर्शने ।
भोज्ये स्नाने व्यवहारे क्रूरे दीप्ते रविः शुभः ॥ ९२ ॥

सुषुम्ना ।

क्षणं वामे क्षणं दक्षे यदा वहति मारुतः ।
सुषुम्णा सा च विज्ञेया सर्वकार्यहरा स्मृता ॥ ९३ ॥
तस्यान्नाड्यां स्थितो वह्निर्ज्वलन्तं कालरूपिणम् ।
विषुवन्तं विजानीयात्सर्वकार्यविनाशकम् ॥ ९४ ॥
यदाऽनुक्रममुल्लङ्घ्य यस्य नाड़ीद्वयं वहेत् ।
तदा तस्य विजानीयादशुभं समुपस्थितम् ॥ ९५ ॥
जीविते मरणे प्रश्ने लाभालाभौ जयाजयौ ।
विषुवे वैपरीत्यं स्यात्संस्मरेज्जगदीश्वरम् ॥ ९६ ॥
ईश्वरस्मरणं कार्यं योगाभ्यासादि कर्मसु ।
अन्यत्तत्र न कर्त्तव्यं जयलाभसुखार्थिभिः ॥ ९७ ॥

प्रकारके क्रूरकार्य पिङ्गला नाड़ी अर्थात् दक्षिणनासापुटमें श्वास बहते समय करनेसे कार्य सिद्ध हुआ करते हैं ॥ ८८—९२ ॥

सुषुम्णा नाड़ीके उदय कालमें कभी वाम और कभी दक्षिणमें प्रवाहित होना कार्यमें हानिकारक है। इस समय ज्वलन्त अग्नि कालरूपसे प्रवाहित हुआ करता है। इसलिये इस समयके किये हुए सबकाम निष्फल हुआ करते हैं। जब श्वासका व्यतिक्रम होकर इड़ा और पिङ्गला दोनों नाड़ियोंमें श्वास बहता हो तब अमङ्गल होने वाला है, ऐसा समझना उचित है। विषुवयोग अर्थात् जिससमय दोनों नाड़ियों स्वर बहता हो, तो उस समय यदि जीवन अथवा मृत्यु, लाभ अथवा अलाभ, जय अथवा पराजय-विषयके प्रश्न हों तो विपरीत फल होगा ऐसा समझना उचित है। इस समय केवल परमेश्वरका स्मरण करना कर्त्तव्य है। जो मनुष्य जय, लाभ और सुखकी इच्छा करते हों, वे सुषुम्णा नाड़ी बहते समय कोई कार्य न

वहन्नाडीस्थितो दूतो यत्पृच्छति शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं सिद्धिमायाति शून्ये शून्यं न संशयः ॥ ९८ ॥
इड़ायाश्च प्रवाहेण सौम्य कार्य्याणि कारयेत् ।
पिङ्गलायाः प्रवाहेण रौद्रकार्य्याणि कारयेत् ॥ ९९ ॥
सुषुम्णायाः प्रवाहेण सिद्धिमुक्तिफलानि च ।
चन्द्रः समस्तु विज्ञेयो रविस्तु विषमः सदा ॥१००॥
चन्द्रःस्त्री पुरुषः सूर्यः चन्द्रो गौरो रविः सितः ।
इड़ापिङ्गलासुषुम्णास्तिस्रो-नाड्यः प्रकीर्त्तिताः ॥१०१॥
आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे ।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये ॥१०२॥
सार्द्धद्विघटिका ज्ञेया शुक्ले कृष्णे शशी रविः ।
वहत्येक दिनेनैव यथाषष्टिघटिकमात् ॥१०३॥
वहेत्तावद् घटीमध्ये पञ्चतत्वानि निर्द्दिशेत् ।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुर्विपरीते विपर्ययः ॥१०४॥

करें, किन्तु केवल योगाभ्यासादि कर्म और ईश्वर उपासना उस समय करना उचित है ॥९३-९७॥

जिस नासापुटमें स्वर प्रवाहित होता हो, उसी दिशाकीओर यदि दूत खड़ा होकर शुभाशुभ प्रश्न करे, तो कार्य सफल होगा और शून्य दिक्कीओर खड़ा होकर प्रश्न करे, तो निश्चय ही निष्फल होगा। इड़ा नाड़ीमें जब श्वास बहे, तब शुभकर्म पिङ्गलामें जब बहे, तब क्रूर-कर्म और सुषुम्णामें जब बहे, तब योगीको सिद्धि और मुक्तिप्रद कर्म करना उचित है। इड़ाको अधिष्ठात्री देवता चन्द्र संज्ञासम है। पिङ्गलाकी अधिष्ठात्री देवता सूर्यसंज्ञा विषम है। इड़ा नाड़ो स्त्री और पिङ्गला नाड़ो पुरुष है। इड़ा नाड़ोका रंग गौर वर्ण और पिङ्गला नाड़ोका शुक्ल वर्ण है। इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णा ये तीनों नाड़ियाँ इसप्रकार वर्णन की जाती हैं। शुक्लपक्षमें चन्द्रनाड़ी और कृष्णपक्षमें सूर्यनाड़ी प्रतिपद्से तीन-तीन दिन करके क्रमके अनुसार उदय हुआ करती हैं। अहोरात्र साठ घड़ीका हुआ करता है। उसमें जब शुक्लपक्ष हो, तो चन्द्रनाड़ी और जब कृष्णपक्ष हो, तो सूर्य नाड़ो अढ़ाई-अढ़ाई घड़ीक्रमके

शुक्लपक्षे वहेद्वामा कृष्णपक्षे च दक्षिणा ।
जानीयात्प्रतिपत्पूर्वं योगी तद्गतमानसः ॥१०५॥
उदयश्चन्द्रमार्गेण सूर्येणास्तङ्गतो यदि ।
ददाति गुणसंघातं विपरीते विपर्ययम् ॥१०६॥
शशाङ्कं वारयेद्रात्रौ दिवा वार्यो दिवाकरः ।
इत्यभ्यासरतो योगी स योगी नात्र संशयः ॥१०७॥
सूर्येण बध्यते सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रेण बध्यते ।
यो जानाति क्रियामेतां त्रैलोक्यं वशयेत्क्षणात् ॥१०८॥
गुरुशुक्रबुधेंदूनां वासरे वामनाड़िका ।
सिद्धिदा सर्वकार्येषु शुक्लपक्षे विशेषतः ॥१०९॥
अर्काङ्गारशौरीणां वासरे सव्यनाड़िका ।
स्मर्तव्या चरकार्येषु कृष्णपक्षे विशेषतः ॥११०॥

अनुसार उदय हुआ करतो हैं। इसप्रकार जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश ये पाँच तत्त्व सारे दिनरातमें इस साठ घड़ीके अन्तर्गत प्रति ढाई घड़ीमें एक-एक नासिकामें उदय हुआ करते हैं। इसप्रकार प्रतिपदादि तिथियोंमें यदि इस नियमके विपरोत हो, तो उस समय विपरीत फल समझना उचित है॥ ९८-१०४॥

शुक्लपक्षमें वामनाड़ी और कृष्णपक्षमें दक्षिणनाड़ी बहा करती है। यह प्रतिपदादि तिथिके पूर्व योगी एकाग्रचित्त होकर जान सकता है। तिथिकेअनुसार वामनासापुटमें स्वरका उदय और दक्षिणनासा-पुटमें स्वरका अस्त होनेसे बहुत ही शुभ फल समझना उचित है परन्तु यदि विपरीत हो, तो विपरीत फल होगा, इसमें सन्देह नहीं। रात्रि समयमें इड़ा नाड़ोसे और दिनके समयमें पिङ्गला नाड़ोसे स्वर चालन करना उचित है। इसप्रकार जो मनुष्य स्वरचालन क्रिया करते हैं, वे योगी हैं–इसमें सन्देह नहीं। दिनमें पिङ्गलानाड़ी बन्द करके वामनासाद्वारा स्वरचालन करे और रात्रिमें इड़ा नाड़ी बन्द करके दक्षिणनासाद्वारा स्वरचालन करे, इसप्रकार स्वरचालनका अभ्यास और स्वर बदलनेकी रीतिका जो योगो अभ्यास करते हैं, वे क्षणकालमें त्रिभुवन जय करनेमें समर्थ हुआ करते हैं। सोम, बुध, वृहस्पति और शुक्रवारमें इड़ा नाड़ी सब कर्मोंमें शुभफल प्रदान किया करती है।

एकैकस्य घटीपञ्च क्रमेणैवोदयत्यपि ।
क्रमादेकैकनाड्यान्तु तत्वानाम्पृथगुद्भवः ।
अहोरात्रस्य मध्ये तु ज्ञेया द्वादश संक्रमाः ॥१११॥
वृषकर्कटकन्यालिमृगमीने निशाकरः ।
मेषे सिंहे च धनुषि तुलायां मिथुने घटे ॥११२॥
उदयो दक्षिणे ज्ञेयः शुभाशुभविनिर्णयः ।
तिष्ठेत्पूर्वोत्तरे चन्द्रः सूर्यो दक्षिणपश्चिमे ।११३॥
वामाचारप्रवाहेण न गच्छेत्पूर्वकोत्तरे ।
दक्षनाड़ीप्रवाहे तु न गच्छेद् याम्यदक्षिणे ।।११४॥
दक्षिणे यदि वा वामे यत्र संक्रमते शिवः ।
तत्पादमग्रतः कृत्वा निःसरेन्निजमन्दिरात् ।।११५॥

विशेषतः शुक्लपक्षमें इसकेद्वारा कार्योंको विशेष सिद्धि होती है। रवि, मङ्गल और शनिवारके दिन पिङ्गला नाड़ी सब कार्योंमें सिद्धि-दायिनी हुआ करती है और कृष्णपक्षमें इससे विशेषफलकी प्राप्ति हुआ करती है। क्रमके अनुसार एक नाड़ीमें पांचों तत्वोंका पृथक्-पृथक् उदय हुआ करता है और दिन रात्रिके साठ घड़ीके मध्यमें द्वादशवार सञ्चार होता है ॥ १०५-१११ ॥

वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशियोंमें इड़ा नाड़ी और मेष, सिंह, धनु, तुला, मिथुन और कुम्भराशियोंमें पिङ्गला नाड़ीका उदय देखकर शुभ और अशुभ फल निर्णय किया जा सकता है। पूर्व और उत्तर दिशाका अधिपति चन्द्र अर्थात् इड़ानाड़ी और दक्षिण और पश्चिम दिशाका अधिपति सूर्य अर्थात् पिङ्गलानाड़ी है, इस कारण वामनासामें स्वर बहते समय पूर्व और उत्तर दिक्में और दक्षिणनासामें स्वर बहते समय दक्षिण और पश्चिम दिशामें यात्रा करते समय दक्षिणनासापुटमें वायु बहनेसे दक्षिणपाद आगेबढ़ाकर और वामनासिकामें श्वास बहते समय वामपाद आगेबढ़ाकर अपने गृहसे निकलना उचित है। सम्पद् प्राप्तिके निमित्त यात्रा करते समय वामनासापुटमें श्वास देखकर निकले और क्रूरकार्यके निमित्त यात्रा करते समय दक्षिणनासापुटमें जब श्वास चले, तब यात्रा करनेसे कार्योंकी अवश्य सिद्धि होती है। गुरु, बन्धु, राजा, मन्त्री और

चन्द्रः समपदः कार्यो रविस्तु विषमः सदा ।
पूर्णपादं पुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा ॥११६॥
गुरुबन्धुनृपामात्या अन्येऽपीप्सितदायिनः ।
पूर्णाङ्गे खलु कर्त्तव्या कार्यसिद्धिमभीप्सता ॥११७॥
आसने शयने वापि पूर्णाङ्गे विनिवेशिताः ।
वशीभवन्ति कामिन्यो न कर्म नियमान्तरम् ॥११८॥
अरिचौराऽधमाद्याश्च अन्ये चोत्पातविग्रहाः ।
कर्त्तव्या खलु रिक्ताङ्गे जयलाभसुखार्थिभिः ॥११९॥
दूरदेशे विधातव्यं गमनं तुहिनद्युतौ ।
अभ्यर्णदेशे दीप्ते तु तरणाविति केचन ॥१२०॥
शून्यनाड्यां रिपुं जेतुं यत्पूर्वं प्रतिपादितम् ।
जायते नान्याथा चैव यथा सर्वज्ञभाषितम् ॥१२१॥
अग्रतो वामिका श्रेष्ठा पृष्ठतो दक्षिणा शुभा ।
वामं तु वामिका प्रोक्ता दक्षिणे दक्षिणा स्मृता ॥१२२॥

अन्यान्य अभीष्ट कार्यक्षम मनुष्योंके निकट कार्यसिद्धि यदि प्राप्ति करनेकी इच्छा हो, तो जिस नासिकामें स्वर वहनकरे, उस नासिकाकीओर विधानक्रमसे अवस्थित रहकर कार्य करनेसे सिद्धि प्राप्त हुआ करती है ॥११२-११७॥

उपवेशन, शयन, स्त्रीवशीकरणआदि कार्योंमें पूर्णस्वरकीओर विधानपूर्वक कार्य करनेसे सिद्धि होती है तथा शत्रु, चौर अधमकार्य, नानाउपद्रवकार्य और युद्धकार्यआदिमें जयप्राप्तिकी इच्छा रहनेसे बद्धश्वासकीओर रखकर कार्य करनेसे सफलता होगी। इड़ा नाड़ीमें दूरदेश और पिङ्गला नाड़ीमें निकटवर्ती स्थानमें यात्राकरनेसे सफलता होती है। शत्रु पराजय प्रभृति जो कुछ पूर्व कहा गया है, वैसे क्रूरकार्य यदि शून्य नाड़ीमें किये जायँ, तो मङ्गल होगा। इसमें सन्देह नहीं और यही त्रिकालज्ञ पुरुषोंकी सम्मति है। वामनासापुटमें वायु बहते समय सम्मुखमें रहकर यदि प्रश्न करें और दक्षिणनासामें वायु बहते समय यदि पीछेसे प्रश्न करें, तो शुभ समझना उचित है, और वामनासामें श्वास बहते समय वामदिक्में रहकर और दक्षिणनासामें श्वास बहते

पुरो वामार्द्धतश्चन्द्रो दक्षाधः पृष्ठतो रविः।
पूर्णरिक्तविवेकोऽयं ज्ञातव्यो दर्शकैः सदा ॥१२३॥
ऊर्द्ध्वं वामाग्रतो दूतो ज्ञेयो वामपथि स्थितः।
पृष्ठदत्ते तथाऽधस्तात्सूर्यवाहगतः शुभः ॥१२४॥
विषमाङ्के दिवा रात्रौ विषमाङ्के दिनाधिपः।
चन्द्रनेत्राग्नितत्त्वेषु वन्ध्यापुत्रमवाप्नुयात् ॥१२५॥
पिङ्गलायां स्थितो जीवो वामे दूतश्च पृच्छति।
तदपि म्रियते रोगी यदि त्राता महेश्वरः ॥१२६॥
दक्षिणेन यदा वायुर्दुःखं रौद्राक्षरं वदेत्।
तदा जीवति जीवोऽसौ चन्द्रे समफलं भवेत् ॥१२७॥
जीवाकारं च वा धृत्वा जीवाकारं विलोकयन्।
जीवस्थो जीवितम्पृच्छेत्तस्माज्जीवन्ति ते ध्रुवम् ॥१२८॥

समय दक्षिणाग्निक् में रहकर प्रश्न करनेसेभी मङ्गल होगा। सन्मुख, वाम और ऊर्ध्वभागका अधिपति इड़ानाड़ी है, ऐसा समझकर साधक पहले पूर्ण और शून्यनाड़ोका विचार कर लेवें। इड़ा नाड़ी बहते समय ऊर्ध्व, वाम और अग्रभाग और पिङ्गलानाड़ी बहते समय पश्चात् दक्षिण और अधोभागमें खड़ाहोकर प्रश्न करे तो शुभ होगा ॥११८-१२४॥

दिन अथवा रात्रिमें पिङ्गला नाड़ी बहते समय जब पृथिवी जल अथवा अग्नितत्त्वका उदय होता है, उस समय ऋतु रक्षा करनेपर बन्ध्यानारीको भी पुत्रलाभ हुआ करता है। पिङ्गला अर्थात् दक्षिण-नासारन्ध्रमें वायु बहते समय पीछेकी ओरसे यदि प्रश्न करे, तो साक्षात् महादेव त्राणकर्त्ता होनेपर भी रोगी रोग मुक्त नहीं होगा। दक्षिणनासामें श्वास बहते समय यदि विषमवर्णमें प्रश्न हो, तो रोगी बहुत ही क्लेश पाकर आरोग्यलाभ करेगा और वामनासामें श्वास बहते समय यदि विषम अक्षरमें हो, तो भी समान फल होगा। जिस दिक्में रहकर प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करे, उस दिकका नासारन्ध्र प्रश्न करनेसे पूर्व यदि शून्य हो और प्रश्नके पश्चात् ही य पूर्ण हो जाय, तो रोगी मनुष्य मूर्छित हो जाने पर भी जोवित हो जायगा, इसमें सन्देह

आदौ शून्यगतं पृच्छेत्पश्चात्पूर्णो विशेद्यदि ।
मूर्च्छितोऽपि ध्रुवं जीवेद्यदर्थम्परिपृच्छति ॥१२९॥
विपरीताक्षरं प्रश्ने रिक्तायांपृच्छको यदि ।
विपर्ययश्च विज्ञेयं विषमस्योदये सति ॥१३०॥
ओङ्कारः सर्ववर्णानां ब्रह्माण्डे भास्करो यथा ।
मर्त्यलोके तथा पूज्यः स्वरज्ञानी पुमानपि ॥१३१॥
एकाक्षरप्रदातारं नाड़ीभेदनिवेदकम् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा चानृणीभवेत् ॥१३२॥

स्वरसाधनफलम् ।

इड़ा गङ्गेति विज्ञेया पिङ्गला यमुना नदी ।
मध्ये सरस्वतीं विद्यात्प्रयागादि समंततः ॥१३३॥
कायनगरमध्येतु मारुतः क्षितिपालकः ।
भोजने वचने चैव गतिरष्टादशाङ्गुला ॥१३४॥

नहीं। जिस दिक्का नासारन्ध्रश्वास शून्य हो उस दिक्में उपस्थित होकर यदि पृच्छक विपरीत अर्थात् पिङ्गला नाड़ीमें सम और इड़ा नाड़ीमें विषम अक्षरसे प्रश्न करे, तो विपरीत फल होगा और सुषुम्णा नाड़ी बहते समय प्रश्न करनेसे भी अशुभफल हुआ करता है। अक्षर-समूहोंमें जैसे ओंकार, ब्रह्माण्डमें जिसप्रकार सूर्य श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार स्वरशास्त्र ज्ञानी पण्डित पृथिवीमें पूजनीय हुआ करते हैं। स्वरशास्त्र शिक्षादातागुरु जो नाड़ियोंके भेद शिष्यको सिखाते हैं। पृथ्वीमें ऐसे कोई भी पदार्थ नहीं है, जिसको देकर शिष्य गुरुदेवसे उऋण हो सकता हो ॥ १२५-१३२ ॥

इड़ा नाड़ी गंगा और पिङ्गला नाड़ी यमुना और इन दोनोंके वीचमें सुषुम्णा नाड़ी सरस्वती नाड़ी जाननी चाहिये, ये तीनों नाड़ियाँ जहाँ पर मिलती है, वहीं स्थान तीर्थराज प्रयाग कहा जाता है। नगररूप इस शरीरमें वायुरूप राजा विराजमान हो रहा है। भोजन और बात करनेमें श्वासकी गति अष्टादश अङ्गुलीतक हुआ करती है। नासा-रन्ध्रमें श्वास प्रवेश करते समय वायुपरिमाणदश अङ्गुली और निकलते

प्रवेशे दशभिः प्रोक्ता निर्गमे द्वादशाङ्गुला ।
प्राणस्थेषु गतिर्देवि ! स्वभावाद् द्वादशाङ्गुला ॥१३५॥
गमने च चतुर्विंशा नेत्रवेदास्तु धावने ।
मैथुने पञ्चषष्ठिश्च शयने च शताङ्गुला ॥१३६॥
एकाङ्गुलकृते न्यूने प्राणे निष्कामता मता ।
आनन्दस्तु द्वितीये स्यात्कविशक्तिस्तृतीयके ॥१३७॥
वाचः सिद्धिश्चतुर्थे तु दूरदृष्टिस्तु पञ्चमे ।
षष्ठेत्वाकाशगमनं चण्डवेगश्च सप्तमे ॥१३८॥
अष्टमे सिद्धयश्चाष्टौ नवमे निधयो नव ।
दशमे दश मूर्तिश्च छाया नाशो दशैकके ॥१३९॥

समय प्राणवायुका परिमाण द्वादश अङ्गुली हुआ करता है। प्राणस्थ-वायुकी स्वाभाविक गति द्वादश अङ्गुली समझना उचित है, वह गमन करते समय चतुर्विंशति अङ्गुली, धारण करनेमें त्रिचत्वारिंशत् अङ्गुली मैथुन करते समय पञ्चषष्ठि अङ्गुली और शयन करते समय अर्थात् गम्भीर निद्रामें शत अङ्गुली परिमाण हो जाता है। मनुष्यका जो स्वाभाविक द्वादशाङ्गुल श्वासप्रवाह है, उसमें से जो योगी स्वर साधनद्वारा एक अङ्गुल कम करके एकादश अङ्गुल कर लेवे, तो उसको निष्कामवृत्तिकी प्राप्ति हो जाती है, यदि दो अङ्गुल कम करके दशाङ्गुल परिमाण कर लेवे, तो उसे ज्ञानानन्दकी प्राप्ति हो जाती है। यदि तीन अङ्गुल कम करके नव अङ्गुल परिमाण कर सके, तो उसको कवित्व-शक्तिकी प्राप्ति हुआ करती है ॥ १३३-१३७ ॥

यदि चार अङ्गुल कम करके अपने प्राणवायुको आठ अङ्गुल पर घटा सके, तो उसको वाक् सिद्धि हो जाती है। यदि पांच अङ्गुल घटाकर सात अङ्गुल परिमाण कर सके, तो दूर दर्शनकी प्राप्ति हो सकती है। यदि छः अङ्गुल घटाकर श्वासको छः अङ्गुल परिमाणपर ला सके, तो योगीको आकाशगमनकी शक्ति प्राप्ति हो जाती है, यदि सात अङ्गुल घटाकर पाँच अङ्गुलपर ला सके, तो उसमें द्रुतगतिकी प्राप्ति होती है। यदि आठ अङ्गुल कम करके चार अङ्गुल परिमाणपर घटा सके, तो योगीको अणिमा-लघिमा प्रभृति आठों सिद्धियोंकी प्राप्ति हो जाती है, यदि नव अङ्गुल घटाकर तीन अङ्गुलपर परिणत कर सके

द्वादशे हंसचारश्च गङ्गामृतरसं पिबेत् ।
आनखाग्रे प्राणपूर्णे कस्य भक्ष्यञ्च भोजनम् ॥१४०॥
एवं प्राणविधिःप्रोक्ता सर्वकार्ये फलप्रदाः ।
ज्ञायते गुरुवाक्येन न विद्याशास्त्रकोटिभिः ॥१४१॥
अध्यात्मसिद्धिश्च तथाधिभूतसिद्धिः परास्यादधिदैवनाम्नी ।
एवं चतस्रः किल सिद्धयस्युः प्रोक्तास्तथान्या सहजा तुरीया ॥
आसां प्राप्त्यौपयिका यत्ना बहवो विनिर्द्दिष्टाः ।
मन्त्राः तपः स्वराद्याः प्राप्याः सर्वाः स्वरोदयेनैव ॥१४२॥
तत्त्वज्ञानोपलब्धिश्च प्राणानाञ्चैव निघ्नता ।
मनोजयश्च जायन्ते स्वरविज्ञानतः स्फुटम् ॥१४३॥

तो साधकको नव प्रकारकी निधियोंकी प्राप्ति हो जाती है, यदि दश अङ्गुल घटा कर दो अङ्गुल कर लेवे, तो महाशक्ति जगद्धात्री महामाया की दशमूर्ति अथवा दश अवतारोंकी मूर्तियोंका दर्शन हुआ करता है, यदि एकादश अङ्गुली कम करके केवल एक अङ्गुलीपर परिणत कर सके, तो उस साधकके शरीरकी छायाका नाश होकर देवशरीरकी प्राप्ति हो जाती है और यदि द्वादशअङ्गुली अर्थात् पूर्णमात्राको घटा सके अर्थात् श्वास शरीरके अन्तर्गत ही प्रवाहित होता रहे, तो उस श्रेष्ठ योगीको ब्रह्मसद्भावकी प्राप्ति हो जाती है अर्थात् उसका जीवात्मा ब्रह्ममें मिलकर मुक्तिपदका उदय हो जाता है। इस अवस्थामें उस शरीरके नखके अग्रभागपर्यन्त प्राणवायु परिपूरित रहता है। इस-कारण उससमय योगीको आहारआदि क्रिया करनेकी भी आवश्यकता नहीं रहती है ॥ १३८-१४० ॥

इसप्रकारसे प्राणवायु साधन कहा गया, प्राणवायु साधन सब कार्योंमें फलप्रद है। इस प्राणतत्त्वविद्याको श्रीगुरुमुखसे ही सुननेसे सिद्धि प्राप्त हो सकती है अर्थात बिना गुरु उपदेशके कोटि-कोटि शास्त्र पढ़नेपर भी यह शास्त्र नहीं आता ॥१४१॥

सिद्धियां चार प्रकारकी होती हैं यथा अध्यात्म सिद्धि, अधिभूत सिद्धि, अधिदैव सिद्धि और सहज सिद्धि। ये सब सिद्धियां प्राप्त करनेके अनेक उपाय हैं यथा—औषधि, मन्त्र, स्वरसाधन, तप, संयम इत्यादि परन्तु स्वरोदयकेद्वारा ऐसी कोई भी सिद्धि नहीं है, जो

तत्साधनक्रियाः पूर्वं सिद्धिप्राप्तिस्तथा ततः।
अन्ये च विषया नूनं संक्षेपेणोपवर्णिताः ॥१४५॥
प्राणान्संयम्य सम्प्राप्य तत्त्वज्ञानं हि योगिनः।
स्वरोदयस्य साहाय्यात्प्राप्नुवन्ति यथेच्छताम् ॥१४६॥
सर्वकार्यविधाने वै शक्तिमन्तोऽपि योगिनः।
ज्ञानवैराग्यसाहाय्यान्न किञ्चिदपि कुर्वते ॥१४७॥

प्रत्याहार प्रकरणम्।

प्रत्याहारलक्षणम्।

यथा कूर्मो निजाङ्गानि समाकुञ्च्य प्रयत्नतः।
प्राप्यत्यादृश्यतां तेषां निश्चिन्तस्तिष्ठति ध्रुवम् ॥ १ ॥
इन्द्रियेभ्योऽपनीयाथ मनः शक्तिन्तथा दृढम्।
अन्तर्मुखविधानं यत्प्रत्याहारः प्रकथ्यते ॥ २ ॥
अन्तर्जगद् द्वारभूतः प्रत्याहारोऽस्ति तेन वै।
अन्यान्युच्चैः साधनानि लभ्यन्त इह योगिभिः ॥ ३ ॥

सुख साध्य न हो। प्राण वशीकरण तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति मनके जयका प्रधान कारण भूत स्वर विज्ञान, उसके साधनकी रीति तथा उससे नाना सिद्धियोंकी प्राप्ति इत्यादि विषयका अति संक्षेप वर्णन ऊपर किया गया है। प्राण संयम और तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेनेसे उस समय योगिराज स्वरोदय विज्ञानकी सहायतासे जो चाहे वह सब कर सकता है। शक्तिमान् योगिश्रेष्ठ सब कुछ करनेमें समर्थ होनेपर भी ज्ञान और वैराग्यकी सहायतासे इच्छा रहित होता है ॥१४२-१४७॥

प्रत्याहार प्रकरण

प्रत्याहारलक्षण

जिसप्रकार कछुआ अपने अङ्गोंको सिकोड़कर अदृश्य कर देता है, उसीप्रकार मनःशक्तिको इन्द्रियोंसे हटाकर अन्तर्मुख करनेको प्रत्याहार कहते हैं। प्रत्याहार अन्तर्जगत्का द्वाररूप है। प्रत्याहारकी सहायतासे ही अन्य सब उच्चसाधनोंको सिद्धि होती है। इसीकारण प्रत्याहारकी महिमा अधिक है। शाम्भवी मुद्राद्वारा प्रत्याहारका अभ्यास किया जाता है। प्रत्याहार सिद्धिकेलिये अनेकप्रकारकी

शाम्भवीमुद्रयाभ्यासः प्रत्याहारस्य जायते ।
सिद्धये चास्य विविधाः क्रियाः प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ ४ ॥
सिद्ध्युन्मुखेऽस्मिन नादस्य प्रारम्भः किल जायते ।
यत्साहाय्यात्प्राप्यते हि समाधिरपि साधकैः ।
अतोऽस्य महिमाऽऽनन्त्यं मुक्तकण्ठम्प्रगीयते ॥ ५ ॥
शब्दादिविषयाः पञ्च मनश्चैवाति चञ्चलम् ।
चिन्तयेदात्मनो रश्मीन् प्रत्याहारः स उच्यते ॥ ६ ॥
जगद् यद् दृश्यते सर्वं पश्येदात्मानमात्मनि ।
प्रत्याहारः स च प्रोक्तो योगविद्भिर्महात्मभिः ॥ ७ ॥
पदाङ्गुष्ठौ च गुल्फौ च जङ्घा मध्यौ तथैव च ।
चित्योर्मूलं च जान्वोश्च मध्ये चोरुभयस्य च ॥ ८ ॥
पायुमूलन्ततः पश्चाद् देहमध्यं च मेढ्रकम् ।
नाभिश्च हृदयं गार्गि कण्ठकूपस्तथैव च ॥ ९ ॥
तालुमूलश्च नासाया मूलं चाक्ष्णोश्च मण्डले ।
भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च मूर्द्धा च मुनिपुङ्गवे ॥१०॥

क्रियाओंका वर्णन महर्षियोंने किया है। प्रत्याहारकी सिद्धि प्रारम्भ होते ही नादका प्रारम्भ होता है। जिस नादकी सहायतासे समाधि तककी प्राप्ति होती है। इसकारण प्रत्याहारकी महिमा अनन्त है। शब्दादि जो पांच विषय हैं, चञ्चलमन सदा उसमें रमण किया करता है। उनमेंसे मनको हटाकर परमात्माकीओर मनकी गति परिवर्त्तन करना प्रत्याहार कहा जाता है। यावन्मात्र चराचर जगत् जो कुछ देखनेमें आता है, उनसबको अपनेमेंही देखे, तो इस अवस्थाको योगीगण प्रत्याहार कहते हैं। दोनों पदोंके अङ्गुष्ठ और गुल्फ, दोनों जङ्घाओंके मध्यदेश, दोनों चित्योंके मूलदेश, दोनों जानुओंके मध्यदेश, दोनों ऊरुओंके मध्यदेश ॥१-८॥

गुदाका मूलदेश, देहका मध्यदेश, लिङ्गदेश, नाभिदेश, हृदयदेश, कण्ठकूप, तालुका मूलदेश, नासिकाका मूलदेश, दोनों नेत्रोंके मण्डल, दोनों भ्रूओंके मध्यदेश, ललाटदेश और ब्रह्मरन्ध्र, ये सब इस स्थूल शरीरके मर्मस्थान कहे जाते हैं। इन स्थानोंमें क्रमशः नीचेसे ऊपरकी-

स्थानेष्वेतेषु मनसा वायुमारोप्य धारयेत् ।
स्थानात्स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारपरायणः ॥ ११ ॥

प्रत्याहारफलम् ।

भोजनान्ते श्मशानान्ते मैथुनान्ते च या मतिः ।
सा मतिः सर्वदा चेत्स्यात्को न मुच्येत बन्धनात् ॥१२॥
दशेयं परमाप्रोक्ता प्रत्याहारस्य योगिभिः ।
तैरेव चानुभूयन्त एताः सुखकरा दशाः ॥ १३ ॥
प्रत्याहारस्य विविधां क्रियामुपदिशन्ति वै ।
गुरवो योगतत्त्वज्ञाः शिष्यानन्तर्मुखीणकान् ॥ १४ ॥
निष्पन्ने श्रूयते नादः प्रत्याहारस्य साधने ।
अन्तर्जगत्प्रवेशाय स स्याद्राजपथोपमः ॥ १५ ॥

नादानुसन्धानम् ।

मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्तौ चिदात्मने ।
अशक्यतत्त्वबोधानां मूढानामपि सम्मतम् ॥ १६ ॥

ओर प्राणवायु सहित मनको धारण कर करते हुए शेष स्थानमें मनको पहुँचानेसे प्रत्याहार क्रियाका साधन हुआ करता है ॥९-११॥

प्रत्याहारफलकथन

भोजनके अन्तमें श्मशानके अन्तमें और मैथुनके अन्तमें चित्तकी जैसी गति रहती है, वैसी गति जिस साधकमें सदा रहे, वही साधक बन्धनसे मुक्त हो सकता है । यह अवस्था प्रत्याहार साधनका अन्तिम-फल है । इसका अनुभव उन्नत योगीगण ही कर सकते हैं, प्रत्याहार अङ्गकी अनेक क्रियायें हैं, जो अन्तर्मुख साधकको योगतत्त्वज्ञ गुरुदेव यथाधिकार उपदेश देते हैं । प्रत्याहार साधनकी उन्नतावस्थामें नादका श्रवण होने लगता है क्योंकि अन्तर्जगत्में अग्रसर होनेकेलिये नादपथ सीधा और बेरोक है ॥ १२-१५ ॥

नादानुसन्धान ।

मनोन्मनीको नमस्कार और चैतन्यरूपिणी महाशक्तिको नमस्कार क्योंकि तत्त्वज्ञानाशक्त मूढ़जनोंकी भी यही सम्मति है ।

श्रीआदिनाथेन सपादकोटिलयप्रकारा कथिता जयन्ति ।
नादानुसंधान क्रमेक्रमे च मन्यामहे मुख्यतमं लयानाम्॥१७॥
मुक्तासने स्थितो योगी मुद्रां सन्धाय शाम्भवीम् ।
शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्त्रन्तमेकधीः ॥१८॥
श्रवणपुट-नयन युगलघ्राण-मुखानां निरोधनं कार्यम् ।
शुद्धसुषुम्णासरणौ स्फुटममलः श्रूयते नादः ॥१९॥
आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयोऽपि च ।
निष्पत्तिः सर्वयोगेषु स्यादवस्था चतुष्टयी ॥२०॥

आरम्भावस्था ।

ब्रह्मग्रन्थेर्भवेद्भेदो ह्यानन्दः शून्यसम्भवः ।
विचित्रः क्वणको देहेऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः ॥२१॥
दिव्यदेहश्च तेजस्वी दिव्यगन्धस्त्वरोगवान् ।
सम्पूर्णहृदयः शून्य आरम्भो योगवान्भवेत् ।२२॥

श्री भगवान् आदिनाथ शिवजीने चित्तलयकी विधि सपाद कोटि वर्णन की है, उनमेंसे नादानुसन्धान-क्रिया सबमें श्रेष्ठ है । मुक्तासनमें स्थित होकर शाम्भवी मुद्राके साधनसे एकाग्रचित्त होकर योगी दक्षिण कर्णद्वारा सुषुम्ना नाड़ीमें संयम करके नादका श्रवण करे । कर्णयुगल, नयनयुगल, नासिका और मुख इनको हाथकी अङ्गुलीद्वारा बन्द करके निर्मलचित्त ही योगी यदि सुषुम्णागत होकर नादश्रवण करे, तो भी नादानुसन्धान क्रियाका साधन होता है । नादानुसन्धानके चारभेद हैं । यथा—आरम्भावस्था, घटावस्थां, परिचयावस्था और निष्पत्ति अवस्था ॥१७-२०॥

आरम्भावस्था ।

ब्रह्म ग्रन्थि जब भेदन हो जाय, तब आनन्द देनेवाला हृदय आकाशसे उत्पन्न हुआ नानाप्रकारके भूषणोंके शब्दके अनुरूप अनहद-ध्वनि सुनायी दे, वही प्रथम अवस्था है । इस अवस्थामें योगीको दिव्यदेह, दिव्यतेज और गन्ध उत्तम सुगन्ध और नीरोगताकी प्राप्ति हुआ करती है, यह नाद शून्य हृदय आकाशसे ही प्रारम्भ हुआ करता है ॥२१-२२॥

घटावस्था ।

द्वितीयायां घटीकृत्य वायुर्भवति मध्यगः ।
दृढ़ासनो भवेद्योगी ज्ञानी देवसमस्तदा ॥ २३ ॥
विष्णुग्रन्थेस्ततो भेदात्परमानन्दसूचकः ।
अतिशून्ये विमर्दश्च भेरीशब्दस्तथा भवेत् ॥२४॥

परिचयावस्था ।

तृतीयायान्तु विज्ञेयो विहायो मर्दलध्वनिः ।
महाशून्यं तदायाति सर्वसिद्धिसमाश्रयम् ॥२५॥

निष्पत्त्यवस्था ।

चित्तानन्दं तदा जित्वा सहजानन्दसम्भवः ।
दोषःदुःख-जरा-व्याधिक्षुधा-निद्राविवर्जितः ॥ २६ ॥
रुद्रग्रन्थिं यदा भित्वा सर्वपीठगतोऽनिलः ।
निष्पत्तौ वैष्णवः शब्दः क्वणद्वीणाक्वणो भवेत् ॥ २७ ॥

घटावस्था ।

द्वितीय घटावस्था वह कहलाती है,जब प्राणवायु और नाद कण्ठ स्थानके मध्यचक्रसे आरम्भ होता है, उस अवस्थामें योगी आसनमें दृढ़, पूर्णज्ञानी और देवगणकी भाँति शरीरयुक्त हो जाता है। ब्रह्मग्रन्थि भेदनके अनन्तर कण्ठमें स्थित विष्णु ग्रन्थिके भेदनसे इस नादकी उत्पत्ति होती है, इस अवस्थामें अतिशून्यावस्था स्थित भेरीनादका श्रवण हुआ करता है ॥ २३-२४ ॥

परिचयावस्था ।

तीसरी अवस्था वह कहलाती है, जब भ्रूकुटिके मध्यमें जो आकाश है, उस आकाशसे योगीको शब्द सुनायी देने लगे, इस अवस्थामें मर्दल ध्वनि सुनायी देती है और इस तृतीय अवस्थाको प्राप्त होनेसे सिद्धियाँ योगीको आश्रय करने लगती हैं और चतुर्थ [अ]वस्थामें योगीके चित्तमें सम्पूर्ण इन्द्रियादि सुखका नाश होकर [स्व]भाविक आत्मसुखका उदय हो जाता है, तब योगी दोष, दुःख, [जर]ा,व्याधि, क्षुधा और निद्रासे रहित हो जाता है। इस अवस्थामें रुद्र [ग्र]न्थिका भेदन हो जाता है,प्राणवायु तब भ्रूमध्य स्थित सर्वेश्वरपीठको

नादानुसन्धानसमाधिभाजां योगीश्वराणां हृदि वर्द्धमानाम् ।
आनन्दमेकं वचसामगम्यं जानातितं श्रीगुरुनाथ एकः ॥ २८ ॥
कर्णौं पिधाय हस्ताभ्यां यः श्रृणोति ध्वनिं मुनिः ।
तत्र चित्तंस्थिरीकुर्याद्यावत्स्थिर पदं व्रजेत् ॥ २९ ॥
अभ्यस्यमानो नादोऽयं बाह्यमावृणुते ध्वनिम् ।
पश्चाद्विक्षेपमखिलं जित्वा योगी सुखी भवेत् ॥ ३० ॥
श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो नानाविधो महान् ।
ततोऽभ्यासे वर्द्धमाने श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मकः ॥ ३१ ॥
आदौ जलधि-जीमूत-भेरी-झर्झरसम्भवाः ।
मध्ये मर्दल शङ्खोत्था घण्टाकाहलजास्तथा ॥ ३२ ॥
अन्त्ये तु किङ्किणी-वंशी-वीणा-भ्रमरनिःस्वनाः ।
इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते देहमध्यगाः ॥ ३३ ॥

प्राप्त हो जाता है, इस अवस्थामें वीणाका शब्द सुनायी दिया करता है, इसीका नाम निष्पत्ति अवस्था है। बार-बार नादानुसन्धान करनेसे योगीके चित्तमें जो परमानन्दका उदय हुआ करता है;उस परमानन्दका वर्णन वाणीद्वारा नहीं हो सकता, एकमात्र श्रीगुरुदेव ही उस आनन्दको जानते हैं। योगीके स्थिर हो बैठकर अपने कानोंको अङ्गुलीद्वारा बन्द करके कर्णध्वनिके श्रवण करनेसे भी नादानुसन्धान क्रिया होती है। इस क्रियासे क्रमशः चित्तमें लयका उदय होता है। नादके अभ्याससे योगीके चित्तमें बाह्यध्वनिका आवरण हो जाता है और एक पक्षमें ही योगीके चित्तकी चञ्चलता दूर होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो जाता है। पहले नादाभ्यासी योगीको नानाप्रकारके महान् शब्द यथा समुद्रतरङ्ग ध्वनि, मेघ ध्वनि और भेरी आदिकी ध्वनियाँ सुनायी दिया करती हैं, तत्पश्चात् क्रमशः अभ्यास बढ़नेपर नानाप्रकारके सूक्ष्म शब्द सुनायीं दिया करते हैं। जब वायु ब्रह्मरन्ध्रमें गमन करता है, उस समय आदिमें समुद्र और मेघादिके शब्द सुनायी दिया करते हैं तत्पश्चात् मर्दल, शङ्ख, घण्टा आदिके शब्द सुननेमें आया करते हैं ॥२५-३२॥

अन्तमें प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्रमें स्थिर हो जानेपर देह मध्यसे नानाप्रकारके किङ्किणी, वंशी, वीणा और भ्रमर गुंजनकी तरह शब्द श्रवण

महति श्रूयमाणेऽपि मेघभेर्यादिके ध्वनौ ।
तत्र सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं देव नाम परामृशेत् ॥ ३४ ॥
घनमुत्सृज्य वा सूक्ष्मे सूक्ष्ममुत्सृज्य वा घने ।
रममाणोऽपि क्षिप्रं च मनो नान्यत्र चालयेत् ॥ ३५ ॥
यत्र कुत्रापि वा नादे लगति प्रथमं मनः ।
तत्रैव सुस्थिरीभूय तेन सार्द्धं विलीयते ॥ ३६ ॥
मकरन्दं पिबेद् भृङ्गो गन्धं नापेक्षते यथा ।
नादासक्तं तथा चित्तं विषयान्नहि कांक्षते ॥ ३७ ॥
मनोमत्तगजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः ।
नियन्त्रणे समर्थोऽयं निनादनिशिताङ्कुशः ॥ ३८ ॥
बद्धं तु नादबन्धेन मनः सन्त्यक्तचापलम् ।
प्रयाति सुतरां स्थैर्यं छिन्नपक्षः खगो यथा ॥ ३९ ॥

गोचर हुआ करते हैं । जब मेघभेरी आदिके महान् शब्द सुनायी देने लगें, तब साधकको उचित है कि, संयमद्वारा सूक्ष्म शब्द सुननेके-लिये यत्न करे । साधनके समय योगीको उचित है कि, घन शब्दसे सूक्ष्म शब्दमें और सूक्ष्म शब्दसे घन शब्दमें ही मनको नियोजित रखे और रजोगुणसे अति चञ्चल मनको अन्य किसीओर जाने न दे । जिस नादमें प्रथम मन लग जाय, योगीको उचित है कि, उसी नादमें मनको स्थिर करके लय करनेकी चेष्टा करे । जैसे भ्रमर पुष्प रसको पीकर पुनः पुष्प सुगन्धिकी इच्छा नहीं करता, उसीप्रकार योगीको उचित है कि, अपने नादसक्तचित्तको विषय चिन्तासे रहित करे । मनरूप मत्तमातङ्ग विषयरूप उद्यानमें सदा भ्रमण किया करता है, एक मात्र नादानुसन्धानरूप क्रियाही उस मातङ्गकेलिये अङ्कुश है । जिसप्रकार छिन्न पक्ष पक्षी स्वयं स्थिरताको प्राप्त हो जाता है, उसी-प्रकार चञ्चलमन भी नादरूप बन्धनद्वारा स्थिरताको प्राप्त हुआ करता है । जो योगी सबप्रकारकी चिन्ताओंको त्याग करके योग साम्राज्य भोग करनेकी इच्छा करता हो, उसीको नादानुसन्धान करना उचित है । जिसप्रकार जालके बन्धनमें आकर मृग स्थिरताको प्राप्त हो जाता

सर्वचिन्तांपरित्यज्य सावधानेन चेतसा ।
नाद एवाऽनुसन्धेयो योगसाम्राज्यमिच्छता ॥ ४० ॥
नादोऽन्तरङ्ग-सारङ्ग-बन्धने वागुरायते ।
अन्तरङ्गकुरङ्गस्य वधे व्याधायतेऽपि च ॥ ४१ ॥
अन्तरङ्गस्य यमिनो वाजिनः परिघायते ।
नादोपास्तिरतो नित्यमवधार्या हि योगिना ॥ ४२ ॥
बद्धं विमुक्त चाञ्चल्यं नादगन्धकजारणात् ।
मनः पारदमाप्नोति निरालम्बाख्यखेऽटनम् ॥ ४३ ॥
नादश्रवणतः क्षिप्रमन्तरङ्गभुजङ्गमः ।
विस्मृत्य सर्वमेकाग्रः कुत्रचिन्नहि धावति ॥ ४४ ॥
काष्ठे प्रवर्त्तितो वह्निः काष्ठेन सह शाम्यति ।
नादे प्रवर्त्तितं चित्तं नादेन सह लीयते ॥ ४५ ॥
घण्टादिनादसक्त-स्तब्धान्तःकरण-हरिणस्य ।
प्रहरणमपि सुकरं शरसन्धानप्रवीणश्चेत् ॥ ४६ ॥

है, उसीप्रकार नादरूप क्रिया साधनसे ही दुर्दमनीय मन स्थिरताको प्राप्त हो सकता है। जिसप्रकार लगामसे घोड़ा आरोहीके वशीभूत हो जाता है, उसीप्रकार विषयोंसे मनको रोकनेकेलिये योगीगण नादानुसन्धान क्रियाका साधन किया करते हैं ॥३३-४१॥

नादरूप गन्धक जारणद्वारा चञ्चल पारदरूप मन स्थिर होकर निरालम्ब ब्रह्मज्ञानवृत्तिको प्राप्त कर लेता है। नादरूपी मधुरध्वनिको सुनकर अतिशीघ्र ही अन्तरङ्गरूपी मन मोहित होकर विषयोंसे रहित हो एकाग्रचित्त हो जाता है; जिसप्रकार काष्ठमें प्रवृत्त हुआ अग्नि काष्ठ सहित ज्वालारूपका परित्याग करके शान्त हो जाता है, उसीप्रकार नादमें प्रवृत्त हुआ मन नाद सहित लयको प्राप्त हो जाता है। जिस-प्रकार घण्टादि मधुर शब्द श्रवणासक्त मृगको शरसन्धानमें नियुक्त मनुष्यगण विना क्लेश पकड़ ले सकते हैं, उसीप्रकार नादासक्त चित्तको भी साधकगण बहुत शीघ्र ही लय प्राप्त करा सकते हैं ॥ ४२-४६ ॥

अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिर्य उपलभ्यते ।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्ञेयं ज्ञेयस्यान्तर्गतं मनः ।
मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ४७ ॥
तावदाकाशसङ्कल्पो यावच्छब्दः प्रवर्त्तते ।
निःशब्दं तत्परं ब्रह्म परमात्मेति गीयते ॥ ४८ ॥
यत्किञ्चिन्नादरूपेण श्रूयते शक्तिरेव सा ।
यस्तत्त्वान्तो निराकारः स एव परमेश्वरः ॥ ४९ ॥
प्रत्याहारादासमाधेर्नादभूमिः प्रकीर्त्तिता ।
नादश्रुतेः क्रमोन्मेषी जायते क्रमशस्तथा ॥ ५० ॥
अन्तर्जगत्यग्रसराः साधकाः स्युर्यथा यथा ।
नाद एव महद्ब्रह्म परमात्मा परः पुमान् ॥ ५१ ॥

धारण प्रकरणम् ।

अन्तर्जगत्समासाद्य पञ्चतत्त्वेषु कुत्रचित् ।
सूक्ष्मप्रकृतिभावेषु यदा शक्नोति योगवित् ।
आधातुमन्तःकरणान्तदा सा धारणा भवेत् ॥ १ ॥

यथार्थ अनहद शब्द जब सुनायी देने लगता है, तब नादध्वनिके अन्तर्गत ईश्वररूपका दर्शन होता है और तत्पश्चात् परमात्मामें मन लयको प्राप्त होकर जीव विष्णुके परमपदको पहुँच जाता है। जबतक नादका श्रवण होता है, तबतक आकाशकी स्थिति रहती है परन्तु जब मन सहित शब्द लयको प्राप्त हो जाता है,तब जीव ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। नादरूपसे जो कुछ श्रवण होता है, वही महाशक्ति है और जो शब्द रहित निराकार अवस्था है। वही परब्रह्म परमात्माका रूप है अर्थात् नाद अवस्थामें सगुणब्रह्म तत्पश्चात् निर्गुणब्रह्मका अनुभव हुआ करता है। नादानुसन्धानकी भूमि प्रत्याहारसे लेकर समाधिपर्यन्त है और नादश्रवणकी क्रमोन्नति क्रमशः होती है, जैसे-जैसे योगी अन्तर्जगत्में अग्रसर होता है। नादही ब्रह्मस्वरूप है ॥ ४७-५१ ॥

धारण प्रकरण ।

योगी अन्तर्जगत्में पहुँचकर पञ्चसूक्ष्म तत्त्वोंमेंसे किसी सूक्ष्म प्रकृतिके किसी भावमें अन्तःकरणको ठहराता है, उसीका नाम

अनया वशयत्येवान्ताराज्यं योगवित्सदा ।
पञ्चधारणमुद्राभिः पञ्चतत्त्वाधिकारवान् ॥ २ ॥
गुरूपदेशलभ्या या परा वै धारणा क्रिया ।
प्राप्यन्ते शक्तयस्ताभिर्विविधाः साधकैः पराः ॥ ३ ॥
स्नेहपूर्णे यथा पात्रे मन आधाय निश्चलम् ।
पुरुषो युक्त आरोहेत्सोपानं युक्तमानसः ॥ ४ ॥
सुस्थेयं क्षुरधारासु निशितासु महीपते ।
धारणासु तु योगस्य दुःस्थेयमकृतात्मभिः ॥ ५ ॥
भूमिरापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ।
एतेषु पञ्चभूतेषु धारणा पञ्चधेष्यते ॥ ६ ॥
पादादिजानुपर्यन्तं पृथ्वीस्थानं प्रकीर्तितम् ।
आजान्वोः पायुपर्य्यन्तमपां स्थानं प्रकीर्त्तितम् ॥ ७ ॥
आपायोर्हृदयान्तं च वह्निस्थानमुदाहृतम् ।
आहृन्मध्याद् भ्रुवोर्मध्यं यावद्वायुस्थलं स्मृतम् ॥ ८ ॥

धारणा है। पञ्चधारणा मुद्राओंकी सहायतासे पञ्चतत्त्वोंपर अधिकार जमाकर गुरूपदेशलभ्य धारणाक्रियाद्वारा योगवित् साधक अन्तरराज्यको वशीभूत कर सकते हैं। उससे विविध शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। जिसप्रकार तैलपूर्ण पात्रको लेकर पुरुष निश्चलचित्त होता हुआ सीढ़ियोंपर चढ़ता है, साधकको उसीप्रकार युक्त मानस होना उचित है। तीक्ष्ण क्षुर धारापर स्थिर होना सुगम हो सकता है परन्तु अकृतात्माओंसे योगकी धारणामें स्थिर रहना कठिन है ॥ १-५ ॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँचभूत हैं। इस कारण धारणा भी पाँच प्रकारकी हुआ करती हैं। पैरोंसे लेकर जानुपर्य्यन्त पृथिवीतत्त्वका स्थान, जानुसे लेकर गुदा पर्यन्त जलतत्त्वका स्थान, जानुसे लेकर गुदा पर्यन्त जलतत्त्वका स्थान, गुदासे लेकर हृदयपर्यन्त अग्नितत्त्वका स्थान. हृदयसे लेकर भ्रूपर्यन्त वायुतत्त्वका स्थान और भ्रूसेलेकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त आकाशतत्त्वका स्थान कहलाता है। श्रेष्ठमुनिगण पञ्चधारणा नामक मुद्राद्वारा इसप्रकार पञ्चतत्त्व धारणाका अभ्यास करते हैं। इसप्रकार मेधावी योगी पूर्व कथित रीतिकेअनुसार

आभ्रूमध्यात्तु मूर्द्धान्तं यावदाकाशमिष्यते ।
मुनिश्रेष्ठः साधयेत्तत् पञ्चधारणमुद्रया ॥ ९ ॥
मेधावी पञ्चभूतानां धारणं यः समभ्यसेत् ।
ब्रह्मशतगतेनापि मृत्युस्तस्य न विद्यते ॥१०॥

षट्चक्रभेद वर्णनम् ।

मूलाधार पद्मम् ।

अथाधारपद्मं सुषुम्णास्य लग्नम्,
ध्वजाधो गुदोर्ध्वं चतुःशोणपत्रम् ।
अधोवक्त्रमुद्यत्सुवर्णाभवर्णै- ,
र्वकारादि सान्तैर्युतं वेदवर्णैः ॥११॥

अमुष्मिन्धरायाश्चतुष्कोणचक्रं,
समुद्भासि शूलाष्टकैरावृतं तत् ।
लसत्पीतवर्णं तडित्कोमलाङ्गं,
तदन्तः समास्ते धरायाः स्वबीजम् ॥१२॥

वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिका मध्यसंस्थं,
कोणं तत्त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत्कोमलं कामरूपम् ।
कन्दर्पो नाम वायुर्निवसति सततं तस्य मध्ये समन्ताद्,
जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यप्रकाशः ॥१३॥

पंचभूतोंकी धारणाके अभ्यासमें सिद्धि लाभ करके अमरत्त्वपदको प्राप्तकर लेते हैं अर्थात् धारणासिद्ध होनेपर सौ ब्रह्माके लय होनेपर भी वह योगी पुरुष मृत्युको प्राप्त नहीं होता ॥९-१०॥

मूलाधार पद्म गुदाके ऊपर व लिङ्ग मूलके नीचे सुषुम्णाके मुखमें संलग्न है अर्थात् कन्द व सुषुम्णाके सन्धिस्थलमें इसकी स्थिति है। इसमें रक्तवर्ण चतुर्दल है और इस पद्मकी कर्णिका अधोमुख है। उज्ज्वल सुवर्णकी तरह इन दलोंको दीप्ति है और उसमें व, श, ष, ह ये चार वेद वर्ण हैं। इस पद्मकी कर्णिकामें चतुष्कोणरूप पृथ्वीमण्डल है, जो दीप्तियुक्त पीतवर्ण विद्युताङ्ग कोमल व अष्टशूलकेद्वारा आवृत है। इस पृथ्वीमण्डलके बीचमें पृथ्वीबीज 'लं' विराजमान है। मूलाधारचक्रमें डाकिनी नाम्नी देवीका स्थान है, जो उज्ज्वल चतुर्हस्त सम्पन्ना, रक्तनेत्रा, एक कालीन उदित अनेक सूर्य तुल्य प्रकाशमाना व

तन्मध्येलिङ्गरूपी द्रुतकनककलाकोमलः पश्चिमास्यो-
ज्ञानध्यान-प्रकाशः प्रथमकिशलयाकाररूपः स्वयम्भूः।
विद्युत्पूर्णेन्दुबिम्बप्रकटकरचयस्निग्धसन्तान-हासी -
काशीवासी विलासी विलसति सरिदावर्त्तरूप-प्रकारः ॥१४॥
अस्योद्र्ध्वे विषतन्तुसोदरलसत्सूक्ष्मा जगन्मोहिनी,
ब्रह्मद्वारमुखं मुखेन मधुरं साच्छादयन्ती स्वयम्।
शङ्खावर्त्तनिभा नवीनचपला मालाविलासास्पदा,
सुप्ता सर्पसमा शिरोपरिलसत्सार्द्धत्रिवृत्ताकृतिः ॥१५॥
कूजन्ती कुलकुण्डली च मधुरं मत्तालिमालास्फुटम्,
वाचः कोमलकाव्यबन्धरचनाभेदातिभेदक्रमैः।
श्वासोच्छ्वास विभञ्जनेन जगतां जीवो यथा धार्यते,
सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीप्तावलिः॥ १६॥

तत्त्वज्ञानका प्रकाश करनेवाली है। आधार पद्मकी कर्णिकाओंके गह्वरमें वज्रा नाड़ीके मुखमें त्रिपुरसुन्दरीके अधिष्ठानरूप एक त्रिकोण-रूपी शक्तिपीठ विद्यमान है, जो कामरूप, कोमल व विद्युत्के समान तेज पुञ्ज है। इस त्रिकोणके मध्यमें उसे व्याप्त करके कन्दर्प नामक वायु रहता है. जो जीवको धारण करनेवाला बन्धुजीव पुष्पकी अपेक्षा विशेष रक्तवर्ण व कोटिसूर्य सदृश प्रकाशशाली है। उसके बीचमें अर्थात् कन्दर्पवायु पूर्णकामरूपी त्रिकोणके मध्यमें स्वयम्भूलिङ्ग विद्यमान है, जो पश्चिममुख, तप्तकाञ्चनतुल्य, कोमल, ज्ञान व ध्यानका प्रकाशक प्रथमजात पत्राङ्कुर सदृश अवयव विशिष्ट विद्युत् व पूर्णचन्द्रके बिम्बकी ज्योतिकेतुल्य स्निग्ध ज्योतिःसम्पन्न, जलावर्तके तुल्य आकारयुक्त और काशीवास सदृश विलासशील है॥ ११-१४॥

इस स्वयम्भू लिङ्गके मृणालतन्तु तुल्या, सूक्ष्मा शङ्खवेष्ठनयुक्ता, व सार्द्ध त्रिवलयाकाश, सर्पतुल्य कुण्डलावृत्ति, नवीन विद्युन्माला तुल्य प्रकाशशालिनी, कुल कुण्डलिनी स्वकीय मुखसे स्वयम्भू लिङ्गमुखको आवृत करके निद्रिता रहती है। इसी कुण्डलिनी शक्तिसे मधुर-मधुर शब्द निकलता है। जिससे अकारादि क्षकारान्त समस्त शब्द और कोमल काव्य, बन्धकाव्य, गद्य पद्यात्मक अन्यान्य वाक्य, उनके विशेषभेद, अतिभेदआदि सभी शब्दसृष्टिकी उत्पत्ति होती है।

ध्यात्वैतन्मूलचक्रान्तर-विवर-लसत्कोटिसूर्यप्रकाशां ,
वाचामीशो नरेन्द्रः स भवति सहसा सर्वविद्याविनोदी ।
आरोग्यं तस्यनित्यं निरवधि च महानन्दचित्तान्तरात्मा
काव्यैः काव्यप्रबन्धैः सकलसुरगुरून् सेवते शुद्धशीलः ॥ १७ ॥

मूलपद्मं यथाध्यायेद्योगी स्वयम्भुलिङ्गकम् ।
तदा तत्क्षणमात्रेण पापौघं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ १८ ॥
यद्यत्कामयते चित्ते तत्तत्फलमवाप्नुयात् ।
निरन्तरकृताभ्यासात्तं पश्यति विमुक्तिदम् ॥ १९ ॥
बहिरभ्यन्तरे श्रेष्ठं पूजनीयम्प्रयत्नतः ।
ततः श्रेष्ठतमं ह्येतन्नान्यदस्ति मतं मम ॥ २० ॥
आत्मसंस्थं शिवं त्यक्त्वा बहिस्थं यः समर्च्चयेत् ।
हस्तस्थं पिण्डमुत्सृज्य भ्रमते जीविताशया ॥ २१ ॥

कुण्डलिनीके श्वासोच्छ्वासके द्वारासंसारमें जीवकी प्राणरक्षा होती है। ऐसी विद्युत्प्रतिभकुण्डलिनी शक्ति मूलाधार पद्ममें विराजमान है। यही शिवशक्ति विलसित चतुर्दल बीजाधार मूलाधार पद्म है, जिसका ध्यान करनेसे योगी अनन्तफलोंको प्राप्त कर सकते हैं। यथा-मूलाधार पद्मके ध्यान करनेसे योगी वाक्पति, नरोंमें इन्द्र तुल्य व सर्वविद्याविनोदी हो जाते हैं। उनके शरीरमें आरोग्यता और चित्तमें सदाही परमानन्द विराजमान रहता है और काव्यकला कुशल व वाक्सिद्ध होकर वे बृहस्पतिके तुल्य हो जाते हैं ॥ १५-१७ ॥

यदि क्षणमात्र भी योगी मूलाधारपद्म और वहांपर स्थित स्वयम्भूलिङ्गका ध्यान करे, तो क्षणमात्रमें उनकी पाप राशियोंका नाश हो जाता है। जो साधक जिस कामनासे ध्यान करता है, वह उसी कामनाको प्राप्त हो जाता है। जो योगी यत्नपूर्वक इसपद्म और लिङ्गका ध्यानकरता है और अभ्यास करता है, वह बहिरन्तर्व्यापी पूजनीय परम श्रेष्ठ मुक्तिप्रद परमात्माका अन्दर और बाहर दर्शन करनेमें समर्थ हो जाता है। जो साधक अपने हृदयस्थित सर्व मङ्गलप्रद परमात्माके त्यागपूर्वक वे बाहर हैं, ऐसा समझकर बाहर पूजामें तत्पर रहते हैं, वे अशुद्धचित्त हैं, इसमें सन्देह नहीं क्योंकि वे ऐसा करते हैं, जैसे मनुष्य अपने हाथका अन्न दूर फेंक कर भ्रमसे अन्नकेलिये यत्र-तत्र भ्रमण करता हो।

आत्मलिङ्गार्च्चनं कुर्य्यान्नालस्यं च दिने दिने ।
तस्य स्यात्सकला सिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ॥ २२ ॥
निरन्तरकृताभ्यासात् षण्मासात्सिद्धिमाप्नुयात् ।
तस्य वायुप्रवेशोऽपि सुषुम्णायां भवेद् ध्रुवम् ॥ २३ ॥
मनोजयं च लभते वायुविन्दुविधारणम् ।
ऐहिकामुष्मिकी सिद्धिर्भवेन्नैवात्र संशयः ॥ २४ ॥

स्वाधिष्ठान पद्मम् ।

द्वितीयन्तु सरोजं यल्लिङ्गमूले व्यवस्थितम् ।
तद्बादिलान्तषड्वर्णं परिभास्वरषड्दलम् ॥ २५ ॥
स्वाधिष्ठानमिदं तत्तु पङ्कजं शोणरूपकम् ।
बालाख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति देवी यत्रास्ति राकिणी॥ २६ ॥
यो ध्यायति सदा दिव्यं स्वाधिष्ठानारविन्दकम् ।
तस्य कामाङ्गनाः सर्वा भजन्ते काममोहिताः ॥ २७ ॥

जो साधक प्रतिदिन निरलस होकर स्वशरीरस्थ आत्माकी उपासना करते हैं, उनको सबप्रकारके फलोंकी सिद्धि हुआ करती है। यही मेरी आज्ञा है इसमें कोई विचारकी अपेक्षा नहीं। चतुर्दल इस आधारपद्म के ध्यानसे छः मासके मध्यही सिद्धिकी प्राप्ति हुआ करती है और उसके सुषुम्णा नाड़ोके मध्यमें वायु प्रवेश करने लगता है, इसमें सन्देह नहीं। इस आधार पद्मके ध्यानसे मनोजय वायुधारण और विन्दु धारण अर्थात् ऊद्र्ध्वरेतस्त्व शक्तिकी प्राप्ति हुआ करती है। इस लोक और परलोक दोनों लोकोंकी ही सिद्धि प्राप्ति हो जातो है, इसमें कोई भी संदेह नहीं ॥ १८–२४ ॥

लिङ्गमें स्थित दूसरे चक्रका नाम स्वाधिष्ठानचक्र है, ब, भ, म, य, र, ल, ये छः वर्ण उसके छः दल हैं। इस षड्दलपद्मका रङ्ग रक्त है और उसमें बालाख्य सिद्ध लिङ्गकी स्थिति हो रही है और इस चक्रकी अधिष्ठात्री देवीका नाम राकिणी है। जो साधक सदा इस सुन्दर षड्दल पद्मका ध्यान करता है, काम मोहित होकर देवाङ्ग-नागण उसकी सेवा करनेमें सदा व्यग्र रहती हैं। तब वह साधक ऐसे शास्त्रोंकी पूर्णरूपसे व्याख्या करनेको समर्थ हो जाता है, जिनको उसने कभी भी श्रवण नहीं किया था। तब वह योगी नीरोग और भय

विविधं चाश्रुतं शास्त्रं निश्शंको वै वदेद् ध्रुवम् ।
सर्वरोगविनिर्मुक्तो लोके चरति निर्भयः ॥ २८ ॥
मरणं खाद्यते तेन स केनापि न खाद्यते ।
तस्य स्यात्परमा सिद्धिरणिमादिगुणान्विता ॥ २९ ॥
वायु-संचरणाद्देहे रसवृद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
आकाशपङ्कजगलत् - पीयूषमपि वर्धते ॥ ३० ॥

मणिपूरकपद्मम्

तृतीयं पङ्कजं नाभौ मणिपूरकसंज्ञकम् ।
दशारं डादिफान्तार्णं शोभितं हेमवर्णकम् ॥ ३१ ॥
रुद्राख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति सर्वमङ्गलदायकः ।
तत्रस्था लाकिनी नाम्नी देवी परमधार्मिका ॥ ३२ ॥
तस्मिन्ध्यानं सदा योगी करोति मणिपूरके ।
तस्य पातालसिद्धिःस्यान्निरन्तरसुखावहा ॥ ३३ ॥

रहित होकर त्रिलोकमें भ्रमण करनेमें समर्थ होता है। स्वाधिष्ठान ध्यान-कर्त्ता साधक अपनी मृत्युको नाश करनेमें समर्थ हो जाता है परन्तु उसका नाश कोई भी नहीं कर सकता और तब उसको अणिमा आदि सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। इसके सारे शरीरमें प्राणवायुका संचारण होकर रस वृद्धि होती है एवम् सहस्रार पद्ममें झरती हुई सुधाका पान करनेमें वह समर्थ हो जाता है॥ २५-३० ॥

मणिपूरपद्म।

तृतीय मणिपूर नामक चक्र है, जो नाभिमूलमें स्थित है और ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ ये दश सुवर्णमय वर्ण जिसके दश दलरूपसे शोभायमान हैं। जहाँ रुद्राख्यसिद्धिलिङ्ग सबप्रकारके मङ्गलोंको दान कर रहे हैं और जहाँ परमधार्मिका लाकिनीदेवी विराज-मान हो रही है। जो योगी इस मणिपूर चक्रका सदा ध्यान करता है उसको परम सुखदायक पाताल सिद्धिकी प्राप्ति होती है, इसके ध्यानसे सबप्रकारके दुःख और रोगोंकी शान्ति हुआ करती है और इस लोकमें वह सब अभिलषित पदार्थोंको प्राप्त कर सकता है और वह योगी तब कालजयी हो जाता है तथा परकाय प्रवेश करनेकी शक्ति भी

ईप्सितं च भवेल्लोके दुःखरोगविनाशनम् ।
कालस्य वञ्चनं चापि परकायप्रवेशनम् ॥ ३४ ॥
जाम्बूनदादि करणं सिद्धानां दर्शनं भवेत् ।
औषधीदर्शनञ्चापि निधीनां दर्शनं तथा ॥ ३५ ॥

अनाहतपद्मम्

हृदयेऽनाहतं नाम चतुर्थं पङ्कजं भवेत् ।
कादिठान्तार्णि संस्थानं द्वादशच्छदशोभितम् ॥ ३६ ॥
अतिशोणं वायुबीजं प्रसादस्थानमीरितम् ।
पद्मस्थं तत्परन्तेजो वाणलिङ्गं प्रकीर्त्तितम् । ३७ ॥
तस्य स्मरणमात्रेण दृष्टादृष्टफलं लभेत् ।
सिद्धः पिनाकी यत्रास्ते काकिनी यत्र देवता ॥ ३८ ॥
एतस्मिन् सततं ध्यानं हृत्पाथोजे करोति यः ।
क्षुभ्यन्ते तस्य कान्ता वै कामार्त्ता दिव्ययोषितः ॥ ३९ ॥
ज्ञानं चाप्रमितं तस्य त्रिकालविषयं भवेत् ।
दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः स्वेच्छया स्वगतां व्रजेत् ॥ ४० ॥

उसको प्राप्त हो जाती है। मणिपूर ध्यानसिद्ध योगी स्वर्ण आदिकी उत्पत्ति कर सकता है। उसको सिद्धगणके दर्शन हुआ करते हैं, पृथ्वीकी सब औषधियोंको वह देख सकता है और भूगर्भ स्थित धनराशि अन्वेषण करनेमें भी वह समर्थ हो जाता है ॥ ३०-३५ ॥

चतुर्थ हृदय स्थित चक्रका नाम अनाहत चक्र है, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, और ठ यह द्वादश वर्णयुक्त अतिरक्तवर्ण इसके द्वादशदल हैं। हृदय अति प्रसन्न स्थान है। वहाँ (यं) वायुबीज स्थित है। इस अनाहत पद्ममें परम तेजस्वी रक्तवर्ण बाण लिङ्गका अधिष्ठान है, जिसका ध्यान करनेसे इहलोक और परलोकमें शुभ फलकी प्राप्ति हुआ करती है। दूसरे पिनाकी नामक सिद्ध लिङ्ग और काकिनी नामक अधिष्ठात्री देवीकी वहाँ स्थिति है। हृत्पद्मके बीचमें जो साधक इनका ध्यान करता है, देवाङ्गनागण सदा उनकी सेवा करनेमें व्यग्र रहती हैं। उस साधकमें त्रिकाल ज्ञानका उदय हो जाता है, जिसकेद्वारा वह त्रिलोक दर्शन कर सके, वह साधक अपने इच्छानुसार आकाश

सिद्धानां दर्शनं चापि योगिनीदर्शनं तथा ।
भवेत् खेचरसिद्धिश्च खेचराणां जयस्तथा ॥ ४१ ॥
यो ध्यायति परं नित्यं बाणलिङ्गं द्वितीयकम् ।
खेचरी भूचरी सिद्धिर्भवेत्तस्य न संशयः ॥ ४२ ॥
एतद् ध्यानस्य माहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते ।
ब्रह्माद्याः सकला देवा गोपायन्ति परं त्विदम् ॥ ४३ ॥

विशुद्ध पद्मम् ।

कण्ठस्थानस्थितं पद्मं विशुद्धं नाम पञ्चमम् ।
सुहेमाभं (धूम्र वर्णं) स्वरोपेतं षोडशच्छदशोभितम् ॥४४॥
छगलाण्डोऽस्ति सिद्धोऽत्र शाकिनी चाधिदेवता ।
ध्यानं करोति यो नित्यं स योगीश्वरपण्डितः ॥ ४५ ॥
किन्त्वस्य योगिनोऽन्यत्र विशुद्धाख्ये सरोरुहे ।
चतुर्वेदा विभासन्ते सरहस्या निधेरिव ॥ ४६ ॥

भ्रमण कर सकता है, दूर दर्शन और श्रवणकी भी शक्ति उसमें हो जाती है। देवगण और योगिनीगणका वह सदा दर्शन करनेमें समर्थ होता है। वह तब खेचरी सिद्धिद्वारा खेचरोंको जीत सकता है। जो साधक इस चक्र स्थित द्वितीय वाण दिव्य लिङ्गका ध्यान करते हैं, भूचरी और खेचरी ये दोनों सिद्धियाँ उनको प्राप्त हो जाती हैं, इसमें सन्देह नहीं। इस पद्म और अनाहत पद्म स्थित वाणलिङ्गके ध्यानका माहात्म्य वर्णन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं। ब्रह्मादिक देवगण भी इस चक्रके ध्यानको गोपन रखा करते हैं।

विशुद्धपद्म ।

पञ्चम पद्मका स्थान कण्ठमें है और नाम विशुद्धचक्र है। उसका रङ्ग सुन्दर सुवर्णकी तरह है (मतान्तरसें धूम्रवर्ण) अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ अं, अः यह षोडशवर्ण सुशोभित उसके षोडशदल हैं। इस पद्ममें छगलाण्ड नामक सिद्धलिङ्ग और शाकिनी नामक देवीकी स्थिति है। जो मनुष्य नित्य इस चक्रका ध्यान करते हैं, वे इस संसारमें सुपण्डित और योगीश्वर कहलाते हैं। उस योगीको अन्यत्र अन्वेषण करनेका प्रयोजन क्या है ? विशुद्धाख्य चक्रके

रहः स्थाने स्थितो योगी यदा क्रोधवशो भवेत् ।
तदा समस्तं त्रैलोक्यं कम्पते नात्र संशयः ॥ ४७ ॥
इह स्थाने मनो यस्य दैवाद्याति लयं यदा ।
तदा बाह्यं परित्यज्य स्वान्तरे रमते ध्रुवम् ॥ ४८ ॥
तस्य न क्षतिमायाति स्वशरीरस्य शक्तितः ।
संवत्सहस्रं जीवेत्स वज्रादपि दृढाकृतिः ॥ ४९ ॥
यदा त्यजति तद्ध्यानं योगीन्द्रो वह्निमण्डले ।
तदा वर्षसहस्राणि मन्यते तत्क्षणं कृती ॥ ५० ॥

आज्ञा पद्मम् ।

आज्ञापद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम् ।
शुक्लाख्यं तन्महाकालः सिद्धो देव्यत्र हाकिनी ॥ ५१ ॥
शरच्चन्द्रनिभं तत्राक्षरबीजं विजृम्भितम् ।
पुमान् परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वा नावसीदति ॥ ५२ ॥

मध्यमें ही चतुर्वेद रत्नवत् प्रभा विशिष्ट दिखायी पड़ते हैं। इस अवस्थामें योगी यदि कभी कोपान्वित हो, तो उसके डरसे समस्त त्रिलोक कम्पित होता है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं। जो साधक इस षोडशदल पद्ममें दैवात् अपने मनको लय कर देते हैं, वे निर्विषय होकर आत्मामें रमण करते हैं। इस पद्मध्याता साधकका शरीर वज्रसे भी अति कठिन हो जाता है। आधिव्याधिसे उसके शरीरको कोई भी हानि नहीं पहुंच सकती, वह सहस्रोंवर्ष तक जीवित रह सकता है। यदि वह साधक उस पद्मके ध्यानका त्यागकर देता है, तब भी वह योगी पुरुष सहस्राधिक वर्षतक जीवित रह सकता है ॥ ४४-५० ॥

आज्ञापद्म।

भ्रूद्वयके मध्यमें छठवां चक्र है। शुभ्रवर्ण ह, और क्ष, युक्त इसके दो दल हैं और इस चक्रका नाम आज्ञाचक्र है। शुक्ल नामक महाकाल इस पद्मके सिद्धलिङ्ग और हाकिनी नाम्नी महाशक्ति इसचक्रकी अधिष्ठात्रीदेवी है, इस पद्मके पंखुडियोंमें शरत्कालके चन्द्रकी भांति निर्मल श्वेतवर्ण (ठं) चन्द्रबोज दीप्तमान हो रहा है। परमहंस पुरुष जिस बीजके ध्यानसे कभी अवसन्नताको प्राप्त नहीं होते, यह परमतेज

एतदेव परं तेजः सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
चिन्तयित्वा परां सिद्धिं लभते नात्र संशयः ॥ ५३ ॥
एतत् क्षेत्रस्य माहात्म्यमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
शास्त्रेषु बहुधा प्रोक्तं परं तत्त्वं सुभाषितम् ॥ ५४ ॥
यः करोति सदाभ्यासमाज्ञापद्मे विचक्षणः ।
वासनाया महाबन्धं तिरस्कृत्य प्रमोदते ॥ ५५ ॥
यानि यानीह प्रोक्तानि पञ्चपद्म फलानि वै ।
तानि सर्वाणि सुतरामेतज्ज्ञानाद् भवन्ति हि ॥ ५६ ॥

ब्रह्मरन्ध्रम् ।

तत ऊर्द्ध्वं तालुमूले सहस्रारं सुशोभनम् ।
अस्ति यत्र सुषुम्णायां मूलं सविवरं स्थितम् ॥ ५७ ॥
तालुस्थाने च यत्पद्मं सहस्रारं पुरोहितम् ।
तन्मध्ये योनिरेकाऽस्ति पश्चिमाभिमुखी मता ॥ ५८ ॥

स्वरूप आज्ञा चक्रका वर्णन सर्व तन्त्रोंमें गोपनीय है। इसके साधनसे योगीगण परमसिद्धि प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। इस आज्ञापूर-क्षेत्रका माहात्म्य तत्त्वदर्शी ऋषियोंने नानाशास्त्रोंमें बहु प्रकारसे वर्णन किया है। जो मनुष्य आज्ञाचक्रमें मन स्थापनपूर्वक धारणाका अभ्यास करते हैं, वे अपने सब वासना बन्धनोंका तिरस्कारपूर्वक परमानन्दको प्राप्त करते हैं। मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत और विशुद्ध इन पांचों चक्रोंके जो जो फल वर्णन किये गये हैं, वे सब फल एकाधारमें इस आज्ञाचक्रके बीच प्राप्त होते हैं अर्थात् सब पद्मोंसे यह पद्म श्रेष्ठतम समझा गया है ॥ ५१-५६ ॥

इसके अर्थात् द्विदल पद्मके ऊर्ध्वमें जो तालुमूल है, उसमें सुशोभित सहस्रदल कमल है, जहां छिद्रसहित सुषुम्णा नाड़ीका मूलस्थान है। उस सहस्रदल कमलके मूलदेशमें एक त्रिकोणाकार यन्त्र अधोमुख स्थित है। उसके मध्यमें जहांपर सच्छिद्र सुषुम्णा नाड़ीका मूल है, उसीको ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं, उसका नाम मुक्तिद्वार भी कहा जाता है। ब्रह्मरन्ध्रमें ही इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णाका सङ्गम स्थान तीर्थ

तस्या मध्ये सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम् ।
ब्रह्मरन्ध्रं तदेवोक्तं मुक्तिद्वारश्च संज्ञया ॥ ५९ ॥
ब्रह्मरन्ध्रमुखे तासां सङ्गमः स्यादसंशयः ।
यस्मिन् स्नानात्स्नातकानां मुक्तिः स्यादविरोधतः ॥६०॥
इड़ा गङ्गा पुरा प्रोक्ता पिङ्गला चार्कपुत्रिका ।
मध्या सरस्वती प्रोक्ता तासां सङ्गोऽतिदुर्लभः ॥ ६१ ॥
सितासिते सङ्गमे यो मनसा स्नानमाचरेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति ब्रह्म सनातनम् ॥ ६२ ॥
मृत्युकाले प्लुतं देहं त्रिवेण्याः सलिले यदा ।
विचिन्त्य यस्त्यजेत्प्राणान् सः सदा मोक्षमाप्नुयात् ॥६३॥
नातः परतरं गुह्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
गोप्तव्यं तत्प्रयत्नेन न चाख्येयं कदाचन ॥ ६४ ॥
ब्रह्मरन्ध्रे मनो दत्त्वा क्षणार्द्धं यदि तिष्ठति ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ ६५ ॥

श्रेष्ठ प्रयाग कहलाता है; जिसमें स्नान करनेसे स्नानकरनेवालोंको तुरत मुक्ति पदकी प्राप्ति हो जाती है । इड़ा गङ्गा, पिङ्गला यमुना है, जिसे पहले ही कह चुके हैं । इनके बीचमें जो सुषुम्णा नाड़ी है, वही सरस्वती कहलाती है और इन तीनोंका सङ्गम स्थान अति दुर्लभ है ॥ ५७–६१ ॥

इड़ा पिङ्गला सङ्गममें जो साधक स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर सनातन ब्रह्मपदको प्राप्तकर लेता है । मृत्युकालमें यदि साधक चिन्तासे भी इस त्रिवेणीका स्नान करता हुआ शरीर त्याग करता है, वह तत्क्षण मुक्तिपद प्राप्त कर लेता है । त्रिलोकमें इसके सिवाय और कोई गुह्यतर तीर्थ नहीं है । इसकारण यत्नपूर्वक इसका गोपन रखना उचित है । ब्रह्मरन्ध्रमें मन अर्पण करके यदि अर्द्धक्षण भी साधक स्थिर रह सके, तो वह सब पापोंसे मुक्त होकर परम गति प्राप्त कर लेगा । इस ब्रह्मरन्ध्रमें जिसका मन लीन हो जाता है, वही

अस्मिल्लीनं मनो यस्य स योगी मयि लीयते ।
अणिमादिगुणान् मुक्त्वा स्वेच्छया पुरुषे लयः ॥ ६६ ॥

शिव भक्तियोगः ।

अत ऊर्द्ध्वं दिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम् ।
ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदम् ॥ ६७ ॥
कैलासो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति ।
नकुलाख्यो विलासी च क्षयवृद्धिविवर्जितः ॥ ६८ ॥
चित्तवृत्तिर्यदा लीना तस्मिन् योगी भवेद्ध्रुवम् ।
यदा विज्ञायतेऽखण्डज्ञानरूपी निरञ्जनः ॥ ६९ ॥
तस्माद् गलितपीयूषं पिबेद्योगी निरन्तरम् ।
मृत्योर्मृत्युं विधायैवं कुलं जित्वा सरोरुहे ॥ ७० ॥
अत्र कुण्डलिनी शक्तिर्लयं याति कुलाभिधा ।
तदा चतुर्विधा सृष्टिर्लीयते परमात्मनि ॥ ७१ ॥

पुरुष श्रेष्ठ योगी है, इस लोकमें उसकी इच्छाके अनुसार अणिमादिक अष्टसिद्धियां उसकी सेवा करती हैं और देहान्त होनेपर वह ब्रह्ममें ही लयको प्राप्त होता है ॥ ६२-६६ ॥

शिव भक्तियोग ।

इसके अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रके उर्द्ध्वमें सहस्रदल बहिः स्थित है। उस स्थानका नाम कैलाश है, जहां देवाधिदेव महादेव सदा विराजमान हैं; वही महेश्वर नामक परम शिव हैं। उनको नकुल भी कहते हैं, वे नित्य विलासी हैं,उनकी क्षय और वृद्धि कदापि नहीं होती है अर्थात् वे सदा एकरूप ही हैं। इस सहस्रदल कमलमें जो साधक अपनी चित्तवृत्तिको निश्चलरूपसे लीन करताहै, वह अखण्डज्ञानरूपी निरञ्जन परमात्माकी स्वरूपताको प्राप्त कर लेता है अर्थात् मुक्त हो जाता है। इस सहस्रदल पद्मसे विगलित पीयूष धाराको जो योगी निरन्तर पान करता है, वह अपनी मृत्युको मार कर कुलजयद्वारा चिरंजीवी हो जाता है। इसी सहस्रदल कमलमें कुलरूपा कुण्डलिनी

मूलाधारे हि यत्पद्मं चतुष्पत्रं व्यवस्थितम् ।
तत्र कुण्डलिनी शक्तीरन्ध्रं त्यजति नान्यथा ॥ ७२ ॥
षट्चक्रपरिभेदेन भवेत्कुण्डलिनीलयः ।
तदा विज्ञायतेऽखण्डज्ञानरूपो निरञ्जनः ॥ ७३ ॥
सौष्ठवञ्चापि सर्वेऽपि त्रिविधा योगिनोऽनिशम् ।
इमां क्रियां विधातुं वै शक्नुवन्तीति निश्चितम् ॥ ७४ ॥
अस्याः सर्वोऽपि कल्याणं यथावदधिगच्छति ।
उपासका वै पञ्चापि शक्तिपूरुषभावयोः ॥ ७५ ॥
साहाय्याद्धारणाभ्यासात्षट्चक्राणि जयन्ति ते ।
आदिचक्रे हि प्रकृतेः प्राधान्यं मध्यमे द्वयोः ॥ ७६ ॥
सप्तमेऽद्वैतभावस्य पुरुषस्य प्रधानता ।
ज्योतिषा मन्त्रनादाभ्यां षट्चक्राणां हि भेदनम् ॥ ७७ ॥
सम्पद्यते त्रयोऽप्येते श्रेष्ठाः स्युरुत्तरोत्तरम् ।
विज्ञातवान् योगतत्त्वं श्रीगुरोः कृपया भवेत् ॥ ७८ ॥

महाशक्तिका लय होनेपर चतुर्विध सृष्टिका भी परमात्मामें लय हो जाता है। मूलाधारमें जो चार दलोंका पद्म है, इस अवस्थामें वहांकी कुण्डलिनी शक्ति निश्चय करके अपने स्थानको त्याग कर देती है। ॥६७-७२॥ एवं क्रमशः षट्चक्र भेदनद्वारा यहां सहस्रदल पद्ममें आकर लयको प्राप्त हो जाती है, यही शिवशक्ति संयोगरूप मुक्ति क्रिया कहलाती है और इस अवस्थामें वह साधक योगी अखण्ड ज्ञानरूपी निरञ्जन परमात्माके रूपको प्राप्त करके मुक्त हो जाता है। इसमें सुगमता यह है कि, मन्त्रयोगी, हठयोगी, और लययोगी सबकेलिये यह सुगम है और सब उपासकोंकेलिये यह कल्याणप्रद है। शिवोपासक, विष्णु उपासक, सूर्योपासक, गणपति उपासक और शक्ति-उपासक सब ही प्रकृति पुरुषात्मक युगलभावकी सहायतासे धारणा साधनद्वारा षट्चक्र भेदनमें समर्थ हो सकते हैं। प्रथम चक्रमें केवल प्रकृति प्राधान्य मध्यके चक्रोंमें युगल मूर्त्तिका प्राधान्य और सप्तम चक्रमें अद्वैतभावापन्न पुरुषभावका प्राधान्य समझने योग्य है। षटचक्र भेदन मन्त्र,

एतद्योगाधिकारस्य क्रियाया ज्ञानमाप्यते ।
वैदैर्मन्त्रैश्च सततं क्रियेयमतिगोपिता ॥ ७९ ॥

ध्यान लक्षणादिकम् ।

अवलोकनसाहाय्याद् ध्यानवृत्तिपुरस्सरम् ।
साक्षात्कारो हि ध्येयस्य ध्यानमित्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥
तत्तद्योगे पृथग्ध्यानं वर्णितं योगकोविदैः ।
मन्त्रे स्थूलं हठे ज्योतिर्ध्यानं वै सिद्धिदं स्मृतम् ॥ २ ॥
लययोगाय यो ध्यानविधिः समुपवर्णितः ।
बिन्दुध्यानं च सूक्ष्मं वा तस्य संज्ञा विधीयते ॥ ३ ॥
योनिमुद्रा तथा शक्तिचालिनो चाप्युभे परम् ।
साहाय्यं कुरुतो नित्यं बिन्दुध्यानस्य सिद्धये ॥ ४ ॥
साधनेन प्रबुद्धा सा कुलकुण्डलिनी यदा ।
तदा हि दृश्यते किन्तु न स्थिरा प्रकृतेर्वशात् ॥ ५ ॥
परेण पुंसा सङ्गेन चाञ्चल्यं विजहाति सा ।
अतीन्द्रियौ रूपपरित्यक्तौ प्रकृतिपूरुषौ ॥ ६ ॥

ज्योति और नाद इन तीनोंकी सहायतासे हो सकता है। ये तीनों अधिकार उत्तरोत्तर उन्नत हैं। मन्त्र, हठ, लय, राज चारों योगोंके ज्ञाता श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही इस योगका अधिकार क्रम और विभिन्न क्रिया कौशलका उपदेश प्राप्त हो सकता है। वेद और तन्त्रोंमें यह क्रिया अति गोपनीय है ॥ ७३-७९ ॥

ध्यान लक्षणादि ।

अवलोकनकी सहायतासे ध्यान वृत्तिद्वारा ध्येयके साक्षात्कारको ध्यान कहते हैं। विभिन्न योगमार्गमें विभिन्न ध्यानका वर्णन है। यथा मन्त्रयोगमें स्थूलमूर्त्ति ध्यान, हठयोगमें ज्योतिर्ध्यान करनेसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है। लययोगकेलिये महर्षियोंने जिस ध्यानकी विधि वर्णित की है, उसको सूक्ष्मध्यान अथवा बिन्दुध्यान कहते हैं। शक्तिचालिनी मुद्रा और योनिमुद्रा दोनो ही बिन्दुध्यानको सिद्धिमें परम सहायक हैं। साधनद्वारा कुलकुण्डलिनी महाशक्तिका जब उद्-

तथापि साधकानां वै हितं कल्पयितुम्प्रभुः ।
ज्योतिर्मयो युग्मरूपः प्रादुर्भवति दृक्पथे ॥ ७ ॥
ज्योतिर्ध्यानमाधिदैवं बिन्दुध्यानं प्रकीर्त्तितम् ॥ ८ ॥
मुद्रासाहाय्यतो ध्यानं प्रारभ्य नियतेन्द्रियः ।
निश्चलो निर्विकारो हि तत्र दार्ढ्यं समभ्यसेत् ॥ ९ ॥

बिन्दुध्यान फलम् ।

स्थूलध्यानाच्छतगुणं ज्योतिर्ध्यानं विशिष्यते ।
ततोऽपि बिन्दुध्यानस्य फलं शतगुणं स्मृतम् ॥ १० ॥
अति सूक्ष्मतया बिन्दुध्यानं गोप्यं प्रयत्नतः ॥ ११ ॥
कृपया गुरुदेवस्य महामायाप्रसादतः ।
बिन्दुध्यानस्योपलब्धिर्जायते साधकस्य वै ॥ १२ ॥
योगसाधनविज्ञाता योगिराट् परमो गुरुः ।
बिन्दुध्यानोपदेशेन शिष्यश्रेयः करोति हि ॥ १३ ॥
आकर्ण्यते नादशब्दः प्रत्याहारो दृढो यदा ।
अवस्था भेदतो नादवृद्धिः स्यादुत्तरोत्तरम् ॥ १४ ॥

बोधन होने लगता है, तो वे दर्शन पथमें आती हैं, परन्तु प्रकृतिके स्वाभाविक चाञ्चल्यके कारण अस्थिर रहती हैं। क्रमशः महाशक्तिका परम पुरुषके साथ संयोग होनेपर प्रकृतिका चाञ्चल्य दूर हो जाता है। ब्रह्म अथवा ब्रह्मशक्ति अतीन्द्रिय व रूपविहीन होनेपर भी अधिदैव ज्योतिके रूपमें साधकको लयोन्मुख करनेकेलिये युगल रूपमें दर्शन देते हैं। अधिदैव ज्योतिपूर्ण बिन्दुमय उस ध्यानको बिन्दुध्यान कहते हैं। मुद्रादिकी सहायतासे ध्यानका प्रारम्भ करके निश्चल निर्द्वन्द होकर ध्यानकी दृढ़ता की जाती है ॥ १-९ ॥

बिन्दुध्यान फल ।

स्थूल ध्यानसे शतगुण फल ज्योति ध्यानमें है और ज्योति ध्यानसे शतगुण फल बिन्दुध्यानमें है। बिन्दुध्यान अति सूक्ष्मातिसूक्ष्म होनेसे अति कठिन और गोप्य है। श्रीगुरुकृपा और ब्रह्मशक्ति महामायाके प्रसादसे ही बिन्दुध्यानको प्राप्ति होती है। योगसाधन चतुष्टयके

तत्साहाय्याद्धारणायाः सिद्धिर्ध्यानस्य चाप्यते ।
धारणायां समभ्येति ज्योतिः किञ्चित्प्रकाशताम् ।
सार्द्धं धारणया तस्य ज्योतिषोऽपि क्रमोन्नतिः ॥ १५ ॥
धूम - नीहार - खद्योत - शशि - सूर्याग्निभेदतः ।
भेदाच्च पञ्चतत्त्वस्य विकाशो ज्योतिषो भवेत् ॥ १६ ॥
धारणा दृढतायत्ता सिद्धिरस्योपजायते ।
सिद्धायां धारणायां वै ब्रह्मवच्छक्तिरूपकम् ॥ १७ ॥
परात्मदर्शनं बिन्दुध्याने शश्वत्प्रजायते ।
गुणवद्रूपतत्त्वे हि बिन्दुध्यानं प्रकीर्त्तितम् ॥ १८ ॥
जन्मजन्मान्तरप्राप्तसाधनक्रियया भवेत् ।
बिन्दुध्यानोपलब्धिर्हि योगिनः साधकस्य वै ॥ १९ ॥

लयक्रिया प्रकरणम् ।

लयक्रियायाः स्वरूप-फलं च ।

सूक्ष्मा योगक्रिया या स्याद् ध्यानसिद्धिं प्रसाध्य वै ।
समाधिसिद्धौ साहाय्यं विदधाति निरन्तरम् ॥ १ ॥

तत्त्ववेत्ता योगीराज सद्गुरु ही बिन्दुध्यानके उपदेशद्वारा शिष्यको कृतकृत्य कर सकते हैं। प्रत्याहारकी दृढ़ता होते ही नादका श्रवण होना प्रारम्भ हो जाता है। अवस्था भेदसे उत्तरोत्तर नादकी उन्नति होती जाती है। नादकी सहायतासे धारणासिद्धि और ध्यानसिद्धि होती है। ज्योतिका विकाश धारणाभूमिमें होता है। धारणाकी क्रमोन्नतिके साथ ज्योतिकी क्रमोन्नति होती है। धूम्र नीहार, खद्योत, चन्द्र, सूर्य, अग्नि तथा पञ्च तत्त्वोंके भेदसे ज्योतियोंका विकाश होता है। धारणभूमिकी दृढ़तासे इनकी दृढ़ता होती है। अन्तमें धारणाकी सिद्धावस्थामें प्रकृति पुरुषात्मक आत्मदर्शन बिन्दुध्यानमें होता है। बिन्दुध्यान ही सगुणरूपका रहस्य है। बहु जन्म-जन्मान्तरके साधनद्वारा योगीको बिन्दुध्यानकी सिद्धि होती है ॥ १०-१९ ॥

लयक्रिया

जो सूक्ष्म क्रियायें ध्यानकी सिद्धि कराकर साधककी समाधि सिद्धिमें सहायक होती हैं, अलौकिक, भावपूर्ण, अतिगोप्य और

दिव्यभावयुता गोप्या दुष्प्राप्या सा लयक्रिया ।
महर्षिभिर्विनिर्दिष्टा योगमार्गप्रवर्त्तकैः ॥ २ ॥
लयक्रिया प्राणभूता लययोगस्य साधने ।
समाधिसिद्धिदा प्रोक्ता योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ३ ॥
षट्चक्रं षोडशाधारा द्विलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् ।
पीठानि चोनपञ्चाशज्ज्ञात्वा सिद्धिरवाप्यते ॥ ४ ॥
समाधिसिद्धिर्ध्यानस्य सिद्धिश्चाप्यनया भवेत् ।
आत्मप्रत्यक्षतां याति चैतया योगविज्जनः ॥ ५ ॥

व्योमजयीक्रिया ।

शब्दा व्योमगुणा ज्ञेया शब्दसृष्टिरलौकिकी ।
ओङ्काररूपशब्दात्मब्रह्मणः स्वरसप्तमम् ॥ ६ ॥
ततश्च श्रुतयो ग्राममूर्च्छनाद्या विनिर्गताः ।
एषां साहाय्यतः शब्दसृष्टेरानन्त्यमुच्यते ॥ ७ ॥
व्यष्टिशब्दाविचारेणापनीय रसबोधतः ।
वासनां भावयंश्छब्दान् यत्नेन मनसो लयः ।
इत्थं लयक्रियासिद्धः प्रोच्यते योग-पारगैः ॥ ८ ॥

अति दुर्लभ उन क्रियाओंको महर्षियोंने लयक्रिया के नामसे वर्णन किया है। लयक्रिया ही लययोगका प्राणरूप है और समाधि सिद्धिका कारण है। षट्चक्र, षोडश आधार, द्विलक्ष्य, व्योमपञ्चक और उनचास पीठ इनके जाननेसे लययोगमें सिद्धि प्राप्त होती है। लयक्रियाकेद्वारा ध्यानसिद्धि और समाधिसिद्धि होती है एवं आत्मसाक्षात्कार होता है ॥ १-५ ॥

व्योमजयी क्रिया ।

आकाशका गुण शब्द है। शब्द सृष्टि अलौकिक और अनन्त है। ओंकाररूप शब्दात्म ब्रह्मसे सप्तस्वर और तदनन्तर सप्तस्वरसे श्रुति, मूर्च्छना, ग्राम आदिकी सहायतासे शब्दमयी सृष्टिका अनन्त विस्तार है। व्यष्टि शब्दका विचार करके शब्द रस बोधसे वासनाको हटाकर दिव्य शब्दका अनुगमन और शब्दकेसाथ मन लय करनेसे यह क्रिया होती है ॥ ६-८ ॥

आशुगजयी क्रिया।

तन्मात्रा मरुतः स्पर्शस्त्वचातद्ग्रहणम्भवेत्।
तत्तदङ्गेषु वैशिष्ट्यं तत्स्थानं मर्म उच्यते॥ ९॥
मारकोत्तेजकौ चेति मोहकश्चेति तत्त्रिधा।
उत्तेजको मारकात्स्यान्मोहकः प्रबलस्ततः॥ १०॥
तिसृणां मर्मशक्तीनां सङ्घातो यत्र जायते।
अजेयतां समाप्नोति तत्स्थानं जन्तुभिः सदा॥ ११॥
स्पर्शवैषयिकानन्तप्रमादरहितं मनः।
विधाय धारणां ध्यानसाहाय्याद् दिव्यभाविकाम्॥ १२॥
सूक्ष्मां शक्तिमनुसरं लयेन मनसो ध्रुवम्।
क्रिया सम्पद्यते चैषा योगिनामिति निश्चयः॥ १३॥

प्रभाजयी क्रिया।

अग्नितत्त्वस्य तन्मात्रा रूपमुक्तं मनीषिभिः।
नामरूपात्मकं विश्वमिति सा हि बलीयसी॥ १४॥
रूपस्य दर्शनाज्जन्तुर्मोहमाप्नोति निश्चितम्।
अभ्यसेद्रहसि स्थित्वा तन्मात्रा-जय-साधनम्॥ १५॥

आशुगजयी क्रिया।

वायुकी तन्मात्रा स्पर्श है। स्पर्शसुखका ग्राहक त्वचा है। विशेष-विशेष स्थानोंमें विशेषता भी रहती है। विशेष स्थानको मर्मस्थान कहते हैं। मर्मस्थानके तीन भेद हैं। वे यथाक्रम मारक, उत्तेजक और मोहक होते हैं। मारकसे उत्तेजक और उत्तेजकसे मोहकका प्राबल्य है। जहां तीनों मर्मशक्तिका समावेश होता है, वह मर्म जीवकेलिये अजेय होता है। मनको स्पर्शसुख; विषयरस और प्रमादसे रहित करके धारणा व ध्यानकी सहायतासे दिव्य विषयवती सूक्ष्म प्रकृतिका अनुसरण करके मन लय करनेसे यह क्रिया होती है॥ ९-१३॥

प्रभाजयी क्रिया।

अग्नि तत्त्वकी तन्मात्रा रूप है। नामरूपात्मक विश्व होनेके कारण ये तन्मात्रा बलवती है। दर्शन मात्रसे रूप मोहित क्रिया करता है। पञ्च तन्मात्रा जयक्रिया अति एकान्त और गुप्त स्थानमें रह कर

प्रियं रूपं पुरः स्थाप्य वासनाशून्यमानसः ।
दिव्ये तस्मिन् हि मनसो लयात्सिद्ध्यति सा क्रिया॥१६॥

रसजयी क्रिया ।

पञ्चभूतेषु पयसस्तन्मात्रा रस उच्यते ।
संगृह्यते रसनया सा कर्मद्वयतत्परा ॥ १७ ॥
शक्तेर्हि तत्र प्राबल्यं यत्र कार्य्यद्वयश्रुतिः ।
रसना प्रबला तस्यास्तज्जयेन रसो वशः ॥ १८ ॥
जिह्वाग्रे संयमं कुर्य्यान्मनो हि विषयान्तरात् ।
अपनीय रसास्वादे दिव्ये वै मनसो लयः ॥ १६ ॥
एवं गुरूपदेशेन कामनाजयपूर्वकम् ।
जितेन्द्रियत्वमाप्नोति साधयन् साधकः सुधीः ॥ २० ॥

सुरभिजयी क्रिया ।

पृथिवीतत्त्व तन्मात्रा गन्धः प्रोक्तो मनीषिभिः ।
शरीरं पार्थिवं यस्माद्दिव्यगन्धस्य सन्निधिः ॥२१॥

साधन करना होता है। यह क्रिया भी अति गोपन रीतिपर करने योग्य है। अति प्रियसे प्रिय रूपको सन्मुख रखकर मनको वासना और प्रमाद रहित करके दिव्य विषयवती रूपमें मन लय करनेसे यह क्रिया होती है ॥ १४-१६ ॥

रसजयी क्रिया ।

पञ्च भूतोंमें जलकी तन्मात्रा रस है। रसना इन्द्रिय रसका धारक है। रसनेन्द्रिय दो कार्यमें तत्पर है अर्थात् रसनासे दो कार्य होते हैं, यथा बोलना और स्वाद लेना। जहां-जहां दो कार्य होगा वहां शक्तिकी प्रवलता रहती है। इसकारण रसनाकी प्रवलता है। रसनाजय करनेसे रस जय होता है, जिससे मनोजय हो सकता है। रसनाके अग्र भागमें संयम करे और साधनके समय विषयसे मन हटाकर कामना जयपूर्वक दिव्यरस स्वादमें मनको लय करे। गुरूपदेशद्वारा इसप्रकार साधन करनेसे साधक जितेन्द्रिय होता है॥ १७-२० ॥

सुरभिजयी क्रिया ।

पृथिवी तत्त्वकी तन्मात्रा गन्ध है। शरीरके पार्थिव होनेके

यथा क्रियान्तरप्राप्तिर्गुरुदेवोपदेशतः ।
एतत् क्रियारहस्यं तु गुरुदेवाद्धि लभ्यते ॥ २२ ॥
चन्द्रं सम्प्रेक्षमाणेन क्रियेयं सिद्धिराप्यते ।
विषयेभ्यो विरम्यैव दिव्यगन्धे मनोलयात् ॥ २३ ॥
विजित्य चेन्द्रियग्रामान् सुगन्धे वा मनोलयात् ।
क्रियेयं सिद्धिमाप्नोति वदन्तीति पुराविदः ॥ २४ ॥

अजपा क्रिया ।

कुण्डलिन्याः समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी ।
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेद स वेदवित् ॥ २५ ॥
सोऽहं मन्त्रं जपन्देवीमजपां हृदि भावयेत् ।
लयेन मनसो मन्त्रे मनःप्राणलयो भवेत् ॥ २६ ॥
उपासनीया गायत्री त्रिकाल इति सा त्रिधा ।
तथाऽस्या स्त्रिविधा भेदाः प्रोक्तास्तत्तन्त्रवेदिभिः ॥ २७ ॥
मन्त्रप्राणस्थिरत्वं हि प्रथमे परिकीर्त्तितम् ।
प्राणमन्त्रार्थयोः स्थैर्यं द्वितीये किल जायते ॥ २८ ॥

कारण दिव्य गन्ध सदा विद्यमान रहता है । नासिका गन्धका ग्राहक है । सब क्रियाका रहस्य जिसप्रकार श्रीगुरुदेवसे प्राप्त होता है, इस क्रियाका रहस्य भी श्रीगुरुदेवसे प्राप्त होता है । चन्द्रदर्शन करते हुए इस क्रियाका साधन किया जाता है । विषय-राग रहित होकर दिव्य गन्धमें मन लय करनेसे अथवा जितेन्द्रिय होकर किसी सुगन्धमें मन लय करनेसे इस क्रियाका साधन होता है ॥ २१–२४ ॥

अजपा क्रिया ।

कुल कुण्डलिनी महाशक्तिसे उत्पन्न हुई प्राणोंकी धारण करनेवाली जो अजपा गायत्री है, वही महाविद्यारूपिणी प्राणविद्या है । उसके भेदको योगी जान लेनेसे ब्रह्म सर्वज्ञ हो जाता है "सोऽहम्" मन्त्र जप करते हुए निरन्तर अजपा गायत्रीदेवीकी उपासना करे, मन्त्रमें मनका लय करे तब प्राण और मन दोनोंही लय हो जाते हैं । गायत्रीकी उपासनाके सदृश, इसके भी तीन भेद हैं । मन्त्र और प्राणकी स्थिति

स्थितिस्तृतीये भावस्य मनसश्च निगद्यते ।
ततः पश्यन्ति ते देवं परमात्मानमव्ययम् ॥ २९ ॥

शक्तिधारिणी क्रिया ।

बिन्दुः शिवोरजः शक्तिश्चन्द्रो बिन्दूरजो रविः ।
अनयोः सङ्गमादेव प्राप्यते परमम्पदम् ॥ ३० ॥
शिवोपमेन गुरुणा जीवन्मुक्तेन धीमता ।
एतत्क्रिया रहस्यं हि प्रप्यते नात्र संशयः ॥ ३१ ॥
रविचन्द्रौ चन्द्ररवी सङ्गमय्य परस्परम् ।
एकीभावेन लयनं द्विभेदं परिकीर्त्तितम् ॥ ३२ ॥
मनःक्रियाभ्यां साहाय्यात् साध्यो भेदस्तृतीयकः ॥ ३३ ॥

ओङ्कार क्रिया ।

तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत् ।
अवाच्यं प्रणवस्याङ्गं स साक्षादीश्वरोऽव्ययः ॥ ३४ ॥
नादश्रुतेः समुन्नोतौ शिष्यायोपदिशन्ति हि ।
गुरवः साधनविधिमेतस्यास्तद् द्विविधा स्मृता ॥ ३५ ॥

प्रथम । प्राण और मन्त्रार्थकी स्थिति द्वितीय तथा भाव और मनकी स्थिति तृतीय । तदनन्तर आत्मसाक्षात्कार होता है ॥ २५-२६॥

शक्तिधारिणी क्रिया ।

बिन्दुरूपी शिव और रजरूपी शक्ति तथा चन्द्ररूपी बिन्दु और रविरूपी रज इनको एकीभूत कर देनेसे योगीको परमपदकी प्राप्ति होती है । शिव सदृश जितेन्द्रिय योगीराज जीवन्मुक्त महात्मासे ही इस क्रियाका रहस्य प्राप्त होता है । रविको चन्द्रमें और चन्द्रको रविमें मिलाकर एकीभूत करके लय करनेसे दो भेद हैं, तथा मन और क्रियाकी सहायतासे करने योग्य तृतीय भेद है ॥ ३०-३३ ॥

ओङ्कार क्रिया ।

तैल-धाराकी भांति अविच्छिन्न और दीर्घ घण्टाके शब्दकी भांति विशिष्ट जो ओङ्कार है, उसका कोई अङ्ग भी उच्चारण नहीं किया जाता । वह अव्यय ईश्वररूप है । नादश्रवण क्रियामें उन्नति प्राप्त करने-

आधारतः समुत्पद्य सहस्रारं प्रतिष्ठते ।
ध्वनिना तेन मनसो लयो हि प्रथमो भवेत् ॥ ३६ ॥

आज्ञाचक्रं कूर्मचक्रमुभे संयोज्य युक्तितः ।
उत्पद्यते यतो नादः स्थित्वा तत्र मनोलयः ॥ ३७ ॥

विधाय प्राप्नुयाद्योगी ह्यात्मारामत्वमव्ययम् ।
गोपनीया प्रयत्नेन सर्वशास्त्रेष्वियं क्रिया ॥ ३८ ॥

प्रातिभदर्शनक्रिया ।

भूर्भुवः स्वरिमे लोकाः सोमसूर्याग्निदेवताः ।
तस्य मात्रासु तिष्ठन्ति ततः प्रातिभदर्शनम् ॥३९॥

शुचिर्वाऽप्यशुचिर्वापि कुर्वन् प्रातिभदर्शनम् ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ४० ॥

एष योगो महा गुह्यो जरामृत्युविनाशकः ।
तेजोवृद्धिकरश्चैव ह्यणिमादिगुणप्रदः ॥ ४१ ॥

पर गुरु शिष्यको इस क्रियाका उपदेश देते हैं। इस क्रियाके दो भेद हैं। आधारसे जब ध्वनि उत्पन्न होकर सहस्रारमें जा मिलती है, उस समय ध्वनिकेसाथ मनको लय करनेसे प्रथम अवस्था होती है। दूसरी उन्नत अवस्था यह है कि कूर्म, चक्र और आज्ञाचक्र दोनोंका संयोग कराकर जहां नाद उत्पन्न हो, वहीं ठहर जाय और नादमें मन लय करके आत्माराम हो जाय, यह क्रिया सर्व शास्त्रमें गोपनीय है ॥ ३४-३८ ॥

प्रातिभ दर्शन क्रिया ।

जहां तक भूः भुवः स्वः इन लोक त्रय और चन्द्र सूर्य तथा अग्नि इन तेज त्रयकी स्वतन्त्र-स्वतन्त्र स्थिति है, उससे परे प्रातिभका दर्शन हुआ करता है। बाह्य शौच रखकर अथवा न रखकर जो योगी प्रातिभका दर्शन सदा करनेमें समर्थ होता है, वह योगी जलमें पद्मपत्रकी भांति पापोंसे निर्लिप्त हो जाता है। इसके साधनद्वारा जरा और मृत्युका नाश हो जाता है और अनेक सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है ॥ ३९-४१ ॥

ज्योतिष्मती दर्शनक्रिया ।

इच्छा क्रिया तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्री च वैष्णवी ।
त्रिधाशक्तिः स्थिता यत्र ततो ज्योतिरवेक्षणम् ॥ ४२ ॥
लीनाः प्राणा मनसि चेद् गुरुदेवोपदेशतः ।
ज्योतिष्मतीप्रेक्षणं वै साधके नोपलभ्यते ॥ ४३ ॥
क्रियया चैतया ध्यानसिद्धिमाप्य यथाक्रमम् ।
प्राप्नोति परमानन्दपदं योगी निरामयम् ॥ ४४ ॥

चक्र क्रिया ।

प्राणायाम द्विषट्केन प्रत्याहारः प्रकीर्त्तितः ।
प्रत्याहार द्विषट्केन जायते धारणा शुभा ॥ ४५ ॥
धारणा द्वादशे प्रोक्ता ध्यानं ध्यानविशारदैः ।
ध्यानद्वादशके नैव समाधिरभिधीयते ॥ ४६ ॥
एवं साधनतः शश्वज्जयः स्यान्मनसो ध्रुवः ।
प्राणायामेन सकलं साधनं प्राप्यते जनैः ॥ ४७ ॥
यत्समाधौ परं ज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम् ।
तस्मिन्दृष्टे क्रिया कर्म यातायातं न विद्यते ॥ ४८ ॥

ज्योतिष्मती दर्शन क्रिया ।

जहाँ इच्छा, क्रिया और ज्ञानरूपी ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री शक्ति त्रयका स्थान हो, उससे परे ज्योतिष्मतीका दर्शन होता है। प्राण जब मनमें लय हो जाता है, तब गुरूपदिष्ट क्रियाकेद्वारा ज्योतिष्मती-का दर्शन होता है। इसी क्रियाकेद्वारा ध्यानकी सिद्धि करके योगी परमपदकी प्राप्ति कर लेता है ॥ ४२-४४ ॥

द्वादशबार प्राणायाम करनेसे एक चक्रक्रिया प्रत्याहार होता है, द्वादशबार प्रत्याहार करनेसे एक धारणा होती है, द्वादशबार धारणा करनेसे एक ध्यान होता है और द्वादशबार ध्यान करनेसे एक समाधि होती है। इसप्रकार क्रियाद्वारा मनोजय हो सकता है। प्राणायामसे ही सब साधनोंकी भूमि प्राप्त हो सकती है। समाधिमें परमज्योति, तदनन्तर परमपुरुषका दर्शन होता है तदनन्तर क्रियाकर्म आवा-

गुदं मेढ्रञ्च नाभिश्च हृत्पद्मञ्च तदूर्ध्वतः ।
घण्टिकालम्बिकास्थानं भ्रूमध्ये च नभो बिलम् ॥ ४९ ॥
कथितानि नवैतानि ध्यानस्थानानि योगिभिः ।
तत्रात्मानं शिवं ध्यात्वा योगी मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ५० ॥

ब्रह्मदण्ड धारणक्रिया ।

दक्षिणा पिङ्गला नाड़ी वह्निमण्डलगोचरा ।
देवयानमिति ज्ञेया पुण्यकार्यानुसारिणी ॥ ५१ ॥
ईडा च वामनिश्वासः सोममण्डलगोचरा ।
पितृयानमिति ज्ञेया वाममाश्रित्य तिष्ठति ॥ ५२ ॥
गुदस्य पृष्ठभागेऽस्मिन्वीणादण्डस्य देहभृत् ।
दीर्घास्थिमूर्द्धपर्यन्तं ब्रह्मदण्डेति कथ्यते ॥ ५३ ॥
ईडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्णा सूक्ष्मरूपिणी ।
सर्वं प्रतिष्ठितं यत्र सर्वगं सर्वतोमुखम् ॥ ५४ ॥

गमनादि सब दुःख दूर हो जाते हैं। गुदा, मेढ्र, नाभि, हृत्पद्म, तदूर्ध्व घण्टिका, लम्बिका, भ्रूमध्य, और शून्य ये नव स्थान योगीके ध्यानके स्थान हैं। उनमें परमात्माका ध्यान यथाविधि करनेसे योगी मुक्तिपद प्राप्त कर सकता है ॥४५-५०॥

ब्रह्मदण्ड धारणक्रिया

देहके दक्षिण भागमें पिङ्गला नाम्नी नाड़ी है। वह नाड़ी तेजोमयी है और पुण्यकर्मोंका साधन करनेवाली है, उसको देवयान कहते हैं। ईड़ा नाम्नी नाड़ी देहके वामभागके आश्रयपूर्वक स्थित है, वह वाम-निःश्वासद्वारा जाननेयोग्य है और चन्द्रमण्डलगोचर है। इस नाड़ीको पितृ-यान कहते हैं। जीव देहके पृष्ठभागमें गुह्य स्थानके ऊपर वीणादण्डके समान एक ही दीर्घ अस्थि विद्यमान है, वही देह धारण किये रहता है, उसीको ब्रह्मदण्ड कहते हैं। ईड़ा और पिङ्गलाके मध्यभागमें सूक्ष्मरूपिणी सुषुम्णा नाड़ी विद्यमान है, उसमें ही सर्वात्मक, सर्वगत, सर्वतोमुख, ब्रह्मज्योति विराजमान है। इस सुषुम्णा नाड़ीमें सबका बीजस्वरूप जीवात्मक ब्रह्म, जीवगणका क्षेत्रज्ञ और प्राणवायु सब स्थित है एवं अखिल विश्व इसी सुषुम्णाके मध्यमें है। सब भूतोंके अन्तरात्मामें ही सुषुम्णा नाड़ी एक

बीजजीवात्मकस्तेषां क्षेत्रज्ञः प्राणवायवः ।
सुषुम्णान्तर्गतं विश्वं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ५५ ॥
नाना नाड़ीप्रसवगं सर्वभूतान्तरात्मनि ।
उदूर्ध्वमूलमधःशाखं वायुमार्गेण सर्वगम् ॥ ५६ ॥
अधश्चोदूर्ध्वं गतास्तास्तु ब्रह्मदण्डसमाश्रिताः ।
वायुनासह गत्वोदूर्ध्वं ज्ञानी मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ५७ ॥

लयबोधक्रिया ।

खमध्ये कुरु चात्मानमात्ममध्ये च खं कुरु ।
आत्मानं खमयं कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ ५८ ॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ।
निष्कलं तं विजानीयान्मनो यत्र लयं गतम् ॥ ५९ ॥

प्राणसिद्धिक्रिया ।

प्राणापानगती रुन्ध्यात्प्राणायामपरायणः ।
चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत् ॥ ६० ॥

वृक्षरूपसे विराजित है। वह वृक्ष नाना नाड़ियोंका उत्पत्तिस्थान है और वह ऊद्र्ध्वमूल और अधःशाखा-विशिष्ट है और वायुमार्गद्वारा वह सर्वगत है, इसमें सन्देह नहीं। ब्रह्मदण्डका आश्रय करके अधःसे ऊद्र्ध्वको गमन किया जा सकता है। इसप्रकार साधक प्राणकेसाथ सुषुम्णाकी सहायतासे ऊद्र्ध्वगामी होकर मुक्तिपदकी प्राप्तिकर सकता है ॥ ५१ ५७ ॥

लयबोधक्रिया ।

यह दृश्यमान गगनमण्डल जहांतक अनुभवमें आवे स्थावर जंगमात्मक ब्रह्माण्ड वहांतक विश्वव्यापीरूपसे चिन्तन करनेयोग्य है। तदनन्तर गगनमें आत्मा और आकाशमें गगन स्थापित किया जाय, इसप्रकार आत्मा और आकाश दोनों एकीभूत होनेसे और कुछ चिन्तनयोग्य प्रयोजन न रहेगा। ब्रह्मवेत्ता पुरुष इसप्रकारसे ब्रह्ममें अधिष्ठानपूर्वक स्थिरबुद्धि और असम्मूढ होकर निष्कल ब्रह्मका वहीं दर्शन करें, जहां मन लयको प्राप्त हुआ करता है ॥ ५८-५९ ॥

प्राणसिद्धिक्रिया ।

जो प्राणापानकी गति रुद्ध करता है, वही प्राणायाम परायण है।

सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ।
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्मसनातनम् ॥ ६१ ॥
यज्ञान्ते वृत्तिसन्धौ वा प्राणापानगतिक्रिया ।
रुध्यते तत्र सततमात्मचिन्तनमाचरेत् ॥ ६२ ॥
अनेन परमं नित्यमधिगच्छति तत्पदम् ।
एतत्क्रियारहस्यं वै गुरुदेवात्समभ्यसेत् ॥ ६३ ॥

कूटस्थ दर्शनक्रिया ।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
प्रेक्षमाणो नासिकाग्रं दिशश्चानवलोकयन् ॥ ६४ ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ ६५ ॥
निद्रातन्द्रे परित्यज्य चित्सत्तामपि धारयन् ।
गुरुप्राप्तां क्रियां योगी साधयन् नियतेन्द्रियः ।
स वै प्राप्नोति निर्वाणं शाश्वतं परमं पदम् ॥ ६६ ॥

क्योंकि जबतक प्राण चलायमान है, तबतक चित्त भी चलायमान रहता है। परन्तु प्राणकी गति निश्चल होनेपर चित्त भी चाञ्चल्यशून्य हो जाता है। इस यज्ञद्वारा निष्पाप हुआ और यज्ञशेष अमृतभोगी सब यज्ञविद् ब्रह्मपदको प्राप्त किया करते हैं। यज्ञान्तमें और वृत्तियोंकी सन्धिमें प्राणापानकी स्वतः ही गति रुद्ध हो जाती है। उस समय कुछ भी न करे, केवल आत्मचिन्तन करे, उस चिन्तासे परमपदकी प्राप्ति होती है। श्रीगुरुमुखसे इस क्रियाका रहस्य जाना जाता है ॥ ६०-६३ ॥

कूटस्थ दर्शनक्रिया ।

शरीर, मस्तक व ग्रीवाको समान रखकर सरल और निश्चल भावमें स्थिर रहकर नासिकाके अग्रभागका दर्शन करे, उस समय अन्य कोई भाव मनमें न आने देवे। इसप्रकार प्रशान्तात्मा भयरहित ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित योगी मनको निर्विषय करे और योगयुक्त रहकर स्थिर रहे। निद्रा और तन्द्रा दोनोंको त्यागकर चित्सत्ताकी धारणा करे। गुरुमुखसे प्राप्त किया साधन करता हुआ योगिराज निर्वाणरूपी परमपदको प्राप्त कर लेता है ॥ ६४-६६ ॥

तत्पद्दर्शनक्रिया ।

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवञ्चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्यति गूढवत् ॥ ६७ ॥
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिषोऽन्तर्गतं मनः ।
मनसो यत्र विलयस्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ६८ ॥
गोपितेयं क्रिया सर्वोपनिषत्सु च यत्नतः ।
इमां प्राप्य गुरोर्योगी समाधिमधिगच्छति ॥ ६९ ॥

साधनवैचित्र्यम् ।

वेदतन्त्ररहस्यज्ञा मन्त्रयोगविशारदाः ।
उपदेष्टुं क्षमाः साधु मन्त्रयोगाखिलक्रियाः ॥ ७० ॥
तथा हि हठयोगस्य तत्त्वज्ञो योगविज्जनः ।
सिद्धिमाप्य क्रियां गुप्तां बहुधोपदिशन्ति हि ॥ ७१ ॥
विज्ञाय चतुरो योगान् योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
सूक्ष्मराज्यचरैरेवं विविधैव लयक्रिया ॥ ७२ ॥

तत्पद दर्शनक्रिया ।

जीवात्माको एक अरणि और प्रणवको दूसरी अरणि करके ध्यान-रूपी मन्थनका अभ्यास करनेसे अन्तर्निगूढ़ ब्रह्मदर्शन होता है । नादके अन्तर्गत ज्योति और ज्योतिके अन्तर्गत मन है । वह मन जहाँ लय हो वहीं विष्णुका परमपद प्राप्त होता है । यह क्रिया उपनिषदोंमें अति गोपनीय है । केवल गुरुकृपासे इस क्रियाको प्राप्त करके योगी समाधि प्राप्त करता है ॥ ६७-६९ ॥

साधनवैचित्र्य ।

वेद और तन्त्रके रहस्यका ज्ञाता और तन्त्र तथा योगका तत्त्वज्ञ मन्त्रयोगकी सम्पूर्ण क्रियाओंको उपदेश देनेमें समर्थ है । उसीप्रकार हठयोग तत्त्वज्ञ योगी योगविज्ञानके ज्ञाता होनेपर और सिद्धिलाभ करनेपर ऐसी अनेक क्रियाओंका उपदेश दे सकता है, जो प्रकाशित नहीं है । उसीप्रकार योगचतुष्टयका ज्ञाता योगिराज यदि तत्त्वदर्शी और सूक्ष्म राज्यका ज्ञाता हो, तो अनेक प्रकारकी लयक्रियाका उपदेश

जिज्ञासूनां साधकानां श्रेयसे ह्युपदिश्यते ।
अत्येति या मनोवाचं सुगुप्ता चाप्रकाशिता ॥ ७२ ॥

लयक्रिया ।

लयक्रियायाः संसिद्ध्या आत्मसाक्षात्कृतिर्भवेत् ।
तथैव निर्विकल्पस्य समाधेरुदयोऽपि च ॥ १ ॥
ताम्प्राप्य राजयोगी स्यात् कृतकृत्यश्च जायते ।
नूनन्तदानीं लभते स जगद्गुरुयोग्यताम् ॥ २ ॥
गुरोः कृपातः पञ्चानां तन्मात्राणां जये कृते ।
उद्गीथसाधने योगी स्वाधिकारमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥
ब्रह्मवत्सर्वतः पूर्णा उद्गीथस्य क्रिया मताः ।
ब्रह्मशक्तिरिवास्ते च सर्वशक्तिमयी ध्रुवम् ॥ ४ ॥
स्वररूप - गन्ध - शब्द - मनः - प्राणप्रभेदतः ।
रसस्पर्शप्रभेदाच्च क्रियोद्गीथस्य चाष्टधा ॥ ५ ॥
परस्परं भवन्त्यष्टौ ता यथा क्रमशुन्नताः ।
लोकातीते चान्तिमे द्वि देवानामपि दुर्लभे ॥ ६ ॥

जिज्ञासु साधकको दे सकता है, जो क्रियायें मन वाक्से अतीत हैं, गुप्त और अप्रकाशित हैं ॥ ७०-७२ ॥

लयक्रिया

लयक्रियाकी सिद्धिसे आत्मसाक्षात्कार होता है। लयक्रियाकी सिद्धि निर्विकल्प समाधिका उदय कराती है। इसकी सिद्धिको प्राप्त करके साधक राजयोगी बन जाता है और कृतकृत्य हो जाता है, तब वह निश्चय ही जगद्गुरुके अधिकारको प्राप्त होता है। जब योगी पञ्चतन्मात्राओंको गुरुकृपासे जयकर लेता है, तब उसको उद्गीथ साधनका अधिकार प्राप्त होता है। उद्गीथक्रिया ब्रह्मके समान पूर्ण है और ब्रह्मशक्तिके समान सर्वशक्तिमयी है। इसकारण उद्गीथ क्रिया आठप्रकारकी होती है। यथा-स्वरोद्गीथ, रूपोद्गीथ, गन्धोद्गीथ, शब्दोद्गीथ, मनउद्गीथ, प्राणोद्गीथ, रसोद्गीथ और स्पर्शोद्गीथ। इन आठोंमेंसे एक क्रिया दूसरीसे यथाक्रम उन्नत है और अन्तिम दोनों तो लोकातीत हैं। देवतागण भी उसके भेद नहीं समझ

सिद्धा महर्षयः केचित् तद्रहस्यं विदन्ति हि ।
वर्णनन्तद्रहस्यस्य वेदैरपि सुगोपितम् ॥ ७ ॥

स्वरोद्गीथम् ।

प्रणवो बीजमन्त्रश्च वेदमन्त्रस्तथैव च ।
तत्साहाय्यात्स्वरोद्गीथसिद्धिर्भवति निश्चितम् ॥ ८ ॥
सप्तस्वरज्ञानयुक्तः श्रीगुरोरुपदेशतः ।
सप्तस्वराणामुत्पत्तिं सुविकाशन्तथैव च ॥ ९ ॥
परिणामक्रमन्तेषां लयस्थानमुपेत्य च ।
ध्वन्यात्मकस्य शब्दस्य साहाय्यात्साधनञ्चरेत् ॥ १० ॥
तस्य शब्दस्योपभोगं स्वयं कुर्य्यान्न कर्हिचित् ।
तं देवान् कारयेन्नूनं तल्लयस्थानमास्थितः ॥ ११ ॥
स्वरोद्गीथक्रिया सेयं यां द्वारीकृत्य योगवित् ।
संसारस्य जयं कृत्वा कृतकृत्यो भवेद् ध्रुवम् ॥ १२ ॥

रूपोद्गीथं ।

जडाऽजडात्मकं विश्वं ब्रह्मानन्दविकाशभूः ।
ब्रह्मानन्दप्रकाशाय ह्युदभूदखिलं जगत् ॥ १३ ॥

सकते हैं । केवल सिद्ध महर्षिगणमेंसे कोई-कोई उसका रहस्य समझते हैं । वेदोंने भी उनका वर्णन गुप्त रखा है ॥ १-७ ॥

स्वरोद्गीथ ।

प्रणव, बीजमन्त्र, वेदमन्त्रआदिकी सहायतासे स्वरोद्गीथका साधन गुरूपदेशगम्य है । साधकको सप्तस्वरका ज्ञान अवश्य होना चाहिये । साथ-ही-साथ सप्तस्वरोंकी उत्पत्ति उनका विकाश और परिणामक्रम तथा सब स्वरोंके लय स्थानका उपदेश श्रीगुरुकृपासे प्राप्त करके योगी ध्वन्यात्मक शब्दकी सहायतासे इस साधनको करे । शब्दका उपभोग अपनेलिये न करे देवताओंको उनका अर्पण करावे और स्वयं शब्दके लय स्थानमें आत्मरति करें । इस स्वरोद्गीथ क्रियाकेद्वारा योगी संसारको जय करके कृतकृत्य होता है ॥ ८-१२ ॥

रूपोद्गीथ ।

जड़चेतनात्मक विश्व ब्रह्मानन्दका ही विकाश स्थल है । ब्रह्मानन्दके

सुमनोहररूपाणामालया विश्वमुच्यते ।
तस्य प्रत्यङ्गमपि च मनोमुग्धकरम्परम् ॥ १४ ॥
कुमारी बटुकश्चैव रूपसम्पन्नसुन्दरी ।
वृक्षपुष्पादि सर्वं वै रूपोद्गीथावलम्बनम् ॥ १५ ॥
गुरूपदेशतस्तस्य रहस्यमधिगम्य च ।
तत्साधनम्प्रकुर्वीत साधको योगवित्तमः ॥ १६ ॥
न रूपमुपभुञ्जीत देवांस्तदुपभोजयेत् ।
स्वयं रूपलयस्थाने आत्मनो रतिमाचरेत् ॥ १७ ॥
रूपोद्गीथक्रियासिद्ध्या संसारस्याखिलस्य च ।
नायकत्वं समासाद्य ब्रह्मीभावं समश्नुते ॥ १८ ॥

गन्धोद्गीथम् ।

पृथ्वीगुणो गन्ध उक्तः सुगन्धस्तु सुरप्रियः ।
अतो निरन्तरं वायुर्गन्धमावहते किल ॥ १९ ॥
अभिप्रेतसुगन्धस्य साहाय्ये नैव साधकः ।
गुरूपदिष्टविधिना गन्धोद्गीथक्रियाञ्चरेत् ॥ २० ॥

विकाशकेलिये ही विश्वकी सृष्टि हुई है। अति मनोहर रूपमय इस विश्वका प्रत्येक अङ्ग मनोमुग्धकर है। बटुक, कुमारी, सुन्दरी स्त्री, वृक्ष पुष्पादि सब प्राकृतिक सौन्दर्यरूपोद्गीथके अवलम्बन बन सकते हैं। श्रीगुरूपदेशद्वारा उसका रहस्य प्राप्त करके योगीको इसका साधन करना होता है। साधक स्वरूपउपभोग अपनेलिये न करे, देवताओंको उसका उपभोग करावे और स्वयं रूपके लयस्थानमें आत्मरति करे। इस रूपोद्गीथक्रियाकी सिद्धिद्वारा योगिराज संसारका नेतृत्व करता हुआ ब्रह्मीभूत हो जाता है ॥ १३-१८ ॥

गन्धोद्गीथ ।

गन्ध पृथ्वीका गुण है। सुगन्ध देवताओंकेलिये अति प्रिय है, इस कारण वायु उसका वहन करता है। अभिमत सुगन्धकी सहायतासे श्रीगुरूपदेश आप्तविधिद्वारा यह क्रिया की जाती है, साधकगण गन्धका उपभोग अपनेलिये न करें, उसका उपभोग देवताओंको यत्नपूर्वक

न गन्धमुपभुञ्जीत देवांस्तमुपभोजयेत् ।
स्वयं वै योगयुक्तान्तःकरणो रहसि स्थितः ।
योगी गन्धलयस्थाने कुर्य्यादात्मरतिं शुभाम् ॥ २१ ॥
गन्धोद्गीथेन सिद्धेन शरीरे मानुषेऽपि च ।
देवभावं समासाद्य ब्रह्मसायुज्यभाग्भवेत् ॥ २२ ॥

शब्दोद्गीथम् ।

निर्गुणे सगुणे जाते विलासः प्रकृतेर्भवेत् ।
शृङ्गारात्मकसृष्टिस्तु तदाविर्भावमागता ॥ २३ ॥
सर्वप्रथम ओङ्कारः प्रकृतेरादिकम्पने ।
प्रादुर्भूतस्तदा सप्तस्वराः सृष्टिश्च शाब्दिका ॥ २४ ॥
शब्दाद्रूपन्तदा जातं नामरूपात्मकं जगत् ।
रूपात् प्राङ् नाम सम्भूतं तस्मान्नादो विशिष्यते ॥ २५ ॥
प्रियैर्मधुरशब्दैस्तु भुवनं मुग्धतां गतम् ।
सप्तस्वरमयीं गीतिं मनोमुग्धकरीं शुभाम् ॥ २६ ॥
आकर्ण्य मुग्धतां यान्ति विविधा हिंस्रजन्तवः ।
श्रुत्वैव मानवाः सर्वे शब्दान् श्रोत्रसुधासमान् ॥ २७ ॥

करावें, और योगयुक्त अन्तःकरण होकर गन्धके लयस्थानमें आत्मरति करें। गन्धोद्गीथ क्रियाकी सिद्धिद्वारा योगीराज देवताओंको प्राप्त करके मनुष्य शरीरमें ही देवता बनकर ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होता है ॥ १६-२२ ॥

शब्दोद्गीथ ।

निर्गुणसे जब सगुण अवस्थाकी प्राप्ति हुई, तब ब्रह्मप्रकृतिका विलास प्रकट हुआ और शृङ्गारात्मक सृष्टि प्रारम्भ हुई। सबसे प्रथम प्रकृतिके प्रथम हिल्लोलसे ओङ्कार आविर्भूत हुआ, ओङ्कारसे सप्तस्वर प्रकट हुए, तब शब्दमयी सृष्टि हुई। शब्दसे रूप बनकर नामरूपात्मक संसार प्रकट हुआ। रूपसे नाम प्रथम प्रकट होनेसे नादका माहात्म्य इतना अधिक है। मधुर और प्रिय शब्दोंसे जगत मुग्ध होता है और मनोमुग्धकर सप्तस्वरमय गानद्वारा हिंस्र पशु भी सर्वथा मोहित देखनेमें

अमन्दानन्दसन्दोहं समाधिं प्राप्य भुञ्जते ।
श्रीगुरोरुपदेशेन शब्दान् कर्णामृतोपमान् ॥ २८ ॥
नोपभुञ्जीत मतिमान् देवांस्तानुपभोजयेत् ।
स्वयं शब्दलयस्थाने कुर्य्यादात्मरतिं शुभाम् ॥ २९ ॥
शब्दोद्गीथेन सिद्धेन भुवनानि चतुर्दश ।
योगिराजो वशीकृत्य परमं पदमाप्नुयात् ॥ ३० ॥

मनउद्गीथम् ।

इन्द्रियाणां मनो राजा तद्गतिर्वेगवत्तरा ।
योगयुक्तं मनश्चैव सर्वव्यापकतां गतम् ॥ ३१ ॥
देवानपि वशीकुर्य्यात् हंहो किमुत मानवान् ।
अयुक्तमनसो देवा असुरैश्च पराजिताः ॥ ३२ ॥
योगी युक्तमना भूत्वा सन्तिष्ठेच्च निरन्तरम् ।
सा स्थितिः सर्वसिद्धनां बीजमन्त्रवदुच्यते ॥ ३३ ॥
मनो हि विषयाकारं जीवबन्धनकारणम् ।
ब्रह्माकारेण तेनैव योगी ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥

आते हैं। प्रिय शब्दोंका अनुभव होते ही मनुष्य समाधिस्थ होकर आनन्दका अनुभव करता है। योगी श्रीगुरूपदेशद्वारा प्रिय शब्दोंका उपभोग स्वयं न करे, उनका सुन्दर भोग देवताओंको करावे और स्वयं शब्दके लय स्थानमें आत्मरति करें। इससे वह योगिराज शब्दोद्गीथ साधनद्वारा चतुर्दश भुवनको अपने वशीभूत करता हुआ परमपदको प्राप्तकर सकता है ॥ २३–३० ॥

मन उद्गीथ ।

मन सब इन्द्रियोंका राजा है। मनकी गति सबसे अधिक वेगवान् है। योगयुक्त मन सर्वव्यापक अवस्थाको धारण करता है और मृत्युलोकमें प्राणियोंकी तो बात ही क्या है, सब श्रेणीके देवताओंको भी अपने वशीभूत कर सकता है। परन्तु अयुक्त मन होनेपर देवतागण भी असुरोंसे पराजित हो जाते हैं। सर्वथा मनकेद्वारा युक्त रहना योगसिद्धिका बीजमन्त्र है। विषयाकार मन जीवको बन्धन दशा प्राप्त कराता है और ब्रह्माकार मन योगीको ब्रह्मपद प्राप्त कराके मुक्त करता

योगी गुरुकृपां प्राप्य मन उद्गीथमाचरन् ।
मनोरसं न भुञ्जीत तन्देवानुभपोजयेत् ॥ ३५ ॥
स्वयं मनोलयस्थानमभ्येत्यात्मरतिश्चरेत् ।
जीवन्मुक्तस्तदा भूत्वा जित्वा च भुवनत्रयम् ॥ ३६ ॥
महात्मा योगिराजोऽसौ ज्ञानविज्ञानवित्तमः ।
अमुना नरदेहेन साक्षान्नारायणो भवेत् ॥ ३७ ॥

प्राणोद्गीथम् ।

संसारधारकः प्राणः सृष्टिस्थितिलयास्ततः ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्या त्रिमूर्त्तिः प्राण एव च ॥ ३८ ॥
ऋते प्राणस्य साहाय्याद् योगोऽसम्भव ईरितः ।
प्राण एव मनः सूक्ष्मे वीर्यं स्थूले वपुष्यहो ॥ ३९ ॥
अतः प्राणे वशीभूते द्वितयं वशमाप्नुयात् ।
तेजोरूपः प्राण एव साधकानखिलानपि ॥ ४० ॥
स्वस्वरूपाभिमुख्यं हि समाकर्षति निश्चितम् ।
तत्साहाय्यं विना नैवोद्गीथसाधनसम्भवः ॥ ४१ ॥
सर्वतः प्रथमं योगी प्राणोद्गीथं सुसाधयेत् ।
ततः सर्वविधोद्गीथसाधने सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ४२ ॥

है। योगी जब श्रीगुरुदेवकी कृपाद्वारा मन उद्गीथका साधन रहस्य समझता है, तब वह यदि मनका उपभोग स्वयं न करे उसके रसोंका उपभोग प्रेमसे देवताओंको करावे और स्वयं मनके लय स्थानमें आत्म-रति करे, तो वह योगिराज जीवन्मुक्त बनकर तत्क्षणमें त्रिभुवन विजयी होकर नरशरीर धारण करनेपर भी नारायण बन जाता है ॥ ३१-३७ ॥

प्राणोद्गीथ ।

प्राण विश्वका धारक है। प्राणकेद्वारा ही ब्रह्माण्डकी सृष्टि, स्थिति और लयक्रिया सम्पादित होती है। प्राण ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूपी त्रिमूर्त्ति स्वरूप है। इसकारण विना प्राणकी सहायताके कोई योगी योगमार्गमें अग्रसर नहीं हो सकता है। प्राण ही सूक्ष्मशरीरमें मन है और स्थूल-शरीरमें वीर्यरूप है। अतः प्राणको वशीभूत करनेसे वे दोनों वशीभूत

श्रीगुरोरनुकम्पां च समासाद्य सुसाधकः।
ज्ञात्वा प्राणरहस्यं हि प्राणोद्गीथं समाचरेत् ॥ ४३ ॥
अलौकिकाश्च ते पञ्च विषयाः पञ्च लौकिकाः।
एकादशस्य मनसः साहाय्यात्साध्यते हि तत् ॥ ४४ ॥
योगशास्त्रनिधेस्तस्माद् ऋषिभिः पारदर्शिभिः।
तदेकादशभेदेन विभक्तमिह साधनम् ॥ ४५ ॥
मेलयित्वा लघुं प्राणं महाप्राणेन वै समम्।
महाशक्तिरुपास्या हि सावधानेन चेतसा ॥ ४६ ॥
बुद्धिमान् योगयुक्तात्मा साधकस्तदनन्तरम्।
शक्तिप्रसादं परमं देवेभ्यः सुसमर्पयेत् ॥ ४७ ॥
स्वयन्तु यज्ञशेषं हि गृह्णन् संमुदितात्मना।
आत्मप्रसादमासाद्य कृतकृत्यो भवेदिति। ४८ ॥

रसोद्गीथम्।

प्राणोद्गीथे तु संसिद्धे योगी भवति तत्परम्।
उत्कृष्टभक्तिवैराग्यो राजयोगाधिकारवान् ॥ ४९ ॥

होते हैं। प्राण ही तेजरूपको धारण करके सबको स्वस्वरूपकीओर आकर्षण करता है। इसकारण विना प्राणकी सहायताके किसी प्रकारका उद्गीथ साधन सम्भव नहीं होता। प्रथम प्राणोद्गीथ साधन करके, तब अन्य प्रकारके उद्गीथ साधन करनेसे सिद्धिको प्राप्ति होती है। श्रीगुरुकृपा प्राप्त करके प्राणका रहस्य जाननेपर तब योगी प्राणोद्गीथ साधनका अधिकारी बन सकता है। इस साधनको योग पारदर्शी सिद्धोंने ग्यारह भेदोंमें विभक्त किया है, जो पञ्च लौकिक विषय, पञ्च अलौकिक विषय और मनकी सहायतासे किये जाते हैं। प्रथम लघु प्राणको महाप्राणके साथ मिलाकर महाशक्तिकी उपासना करे। तदनन्तर देवताओंकी शक्तिप्रसादका अधिकारी बने और स्वयं यज्ञशेष ग्रहण करता हुआ आत्मप्रसादका अधिकारी होकर कृतकृत्य होवे ॥ ३८-४८ ॥

रसोद्गीथ।

प्राणोद्गीथमें सिद्धि प्राप्त करनेके अनन्तर योगी परा भक्ति, परा वैराग्य और राजयोगका पूर्ण अधिकारी बन जाता है। तदनन्तर उस

ब्रह्मशक्त्याः परायाश्च विद्याया अनुकम्पया।
शिष्टोद्गीथद्वयस्यासौ लभतेऽधिकृतिं ततः॥ ५० ॥
तस्योद्गीथद्वयस्यापि साधनं हि सुदुर्लभम्।
अधिकारस्य राहित्याद्वेदैरपि न वर्णितम्॥ ५१ ॥
प्राणयज्ञस्य संसिद्धिं समुत्कृष्टन्तपोबलम्।
पूर्वं सम्प्राप्य मतिमान् रसोद्गीथं समाचरेत्॥ ५२ ॥
तपोबलेन पूर्णेन योगिराजो महामतिः।
सम्यक्करोति विजयं रासनस्येन्द्रियस्य वै॥ ५३ ॥
रसना तु समाख्याता सर्वतः शक्तिशालिनी।
युक्तं सृष्टिप्रधानं हि तत्र कर्म्मेन्द्रियं यतः॥ ५४ ॥
अपारशक्तिसंयुक्तमेतद्रासनमिन्द्रियम्।
द्वारीकृत्योद्गीथसिद्धिः साध्या त्रैगुण्यवर्जितैः॥ ५५ ॥
स्वरसं वर्जयन् सम्यक् तपःशक्तिञ्च वर्द्धयन्।
रसमास्वादयन् लोके निखिलान्प्राणधारिणः॥ ५६ ॥
रसोद्गीथक्रियायाश्च समर्थः साधने भवेत्।
रसोद्गीथमिदम्प्रोक्तन्देवानामपि दुर्लभम्।
सिद्धराजो राजयोगी समर्थस्तस्य साधने॥ ५७ ॥

सिद्ध पुरुषको ब्रह्मशक्ति पराविद्याकी कृपासे शेष अन्य दोनों उद्गीथ साधनोंका अधिकार प्राप्त होता है। ये दोनों साधन वेदमें भी गुप्त हैं। अनधिकार चर्चा होनेके कारण वेदने इस विषयमें कुछ नहीं कहा है। इस साधनमें प्राणयज्ञकी सिद्धि और तपकी पराकाष्ठा प्राप्ति पहले करनी होती है। तपकी पराकाष्ठासे योगिराज रसना इन्द्रियको सम्पूर्णरूपसे जय कर लेता है। रसना इन्द्रिय बड़ी शक्तिशालिनी है। क्योंकि उसमें एक ऐसी कर्मेन्द्रियका योग है, जो सृष्टि रक्षाके विचारसे सर्व प्रधान है। यही कारण है कि, अपार शक्तियुक्त रसना इन्द्रियकेद्वारा उद्गीथ साधन निस्त्रैगुण्य-अन्तःकरण व्यक्तिकेलिये ही सम्भव है। अपना रस सम्पूर्ण वर्जन करके ही पूर्णशक्तिको धारण करते हुए प्राणिमात्रको रसास्वादन कराते हुए रसोद्गीथका साधन होता है। जो मृत्युलोकमें तो दुर्लभ ही है, अन्य उन्नत देवलोकोंमें भी दुर्लभ है। सिद्धराज योगी ही इसका साधन कर सकते हैं॥ ४९-५७ ॥

स्पर्शोद्गीथम् ।

ब्रह्मणो ब्रह्मशक्तेश्चाभेदज्ञाने प्रतिष्ठिते ।
साधनेऽत्र नरोमुक्तोऽधिकृतिं लभते पराम् ॥ ५८ ॥
सच्चिदानन्दविख्यातभावस्य त्रिविधस्य हि ।
अद्वैतरूपतश्चैव ह्येकाधारे तथापि च ॥ ५९ ॥
अपरोक्षाऽनुभूतिस्तु ब्रह्मदर्शनमीरितम् ।
चिता सतोऽनुगमनं संविधाय विधानतः ॥ ६० ॥
अनुभूतिश्चापरोक्षा किलाद्वैतस्य वस्तुनः ।
सृष्टिस्थितिलयानाञ्च विधात्र्या जगतस्तथा ॥ ६१ ॥
पराभिधाया विद्याया ब्रह्मशक्तेर्हि दर्शनम् ।
अस्य वै वेदवाक्यस्य रहस्यमवगम्य च ॥ ६२ ॥
त्रिगुणेषु समास्थाय निस्त्रैगुण्यः सदा भवन् ।
ब्रह्मणो हि त्रिभावानां रसमास्वादयन्पराम् ॥ ६३ ॥
अद्वैतस्थितिमापन्नः समुद्रे ब्रह्मरूपिणि ।
निमज्जनं सदा कुर्य्यादुन्मज्जनमथापि च ॥ ६४ ॥
स सिद्धपुरुषो लोके तृतीयनयनाग्निना ।
कामञ्जयन् विजानीयात्स्पर्शोद्गीथं हि तन्त्रतः ॥ ६५ ॥

स्पर्शोद्गीथ ।

ब्रह्म और ब्रह्मशक्तिमें अभेद ज्ञान जब प्रतिष्ठित हो जाता है, उस मुक्त पुरुषको ही इस साधनका बोध होता है। सत्, चित् एवं आनन्द इन त्रिविध भावोंका एकाधारमें अद्वैतरूपसे अपरोक्षानुभूति करना ही ब्रह्मदर्शन है और चित्से सत्‌को अनुगमन करके अद्वैत सत्ताकी अपरोक्षानुभूति ही परा विद्यारूपिणी जगत् सृष्टि स्थिति प्रलयकारिणी ब्रह्मशक्तिका दर्शन है। यदि कोई सिद्धपुरुष इस वेद वाक्यका रहस्य समझ सके और सदा त्रिगुणमें रहता हुआ भो निस्त्रैगुण्य हो सके, ब्रह्मके त्रिभावका रसास्वादन करता हुआ सब समय ब्रह्मसमुद्रमें अद्वैत स्थितिको प्राप्त करता हुआ उन्मज्जन निमज्जन करता हो, वही तृतीय नेत्राग्निद्वारा कामविजयी सिद्धपुरुष स्पर्शोद्गीथ साधनका रहस्य

त्रैगुण्यविषये वेदे क्रियेयन्न प्रकाशिता।
तां सत्यलोकवास्तव्या विदन्ति परमर्षयः॥ ६६॥
एतत्क्रियाया विज्ञाता भुवनानि चतुर्दश।
अधिकुर्याद्राजयोगी भूत्त्वा सिद्धिविदां वरः॥ ६७॥
शरीरे वर्त्तमानोऽपि ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्।
ब्रह्मणो ब्रह्मशक्तेश्चाभेदज्ञाने प्रतिष्ठिते॥ ६८॥
पुंस्त्रीदेहेष्वनुभवन् योगं शक्तेः शिवस्य च।
नित्यमुक्तो नित्यतृप्तो वासनारहितस्तथा॥ ६९॥
ब्रह्मानन्दे स्वयं मग्नो लोकान्मज्जयतेऽपि च।
स्पर्शेन्द्रियं व्यापकं वै तत्केन्द्रं वपुरीरितम्॥ ७०॥
तत्रास्ते विद्यमानोऽसौ सर्वस्य विजयो भवन्।
सृष्टेर्दुर्दमनीयैस्तु प्रवाहैः प्रकृतेस्तथा॥ ७१॥
विकर्षणाकर्षणाख्यशक्त्या कर्म्मेन्द्रियेण च।
केवलेनं तु युक्तत्त्वादजेयः सर्वदा स्थितः॥ ७२॥
तत्स्पर्शेन्द्रियसम्बन्ध समूलत्यागमन्तरा।
असम्भवमिदम्प्रोक्तं स्पर्शोद्गीथस्य साधनम्॥ ७३॥

समझ सकता है। त्रैगुण्य विषयक वेदमें यह क्रिया प्रकाशित नहीं है। इसको सत्यलोकवासी ऋषिगण ही हृदयङ्गम कर सकते हैं॥ ५८-६६॥

चतुर्दश भुवनपर इस क्रियाके ज्ञाताका अधिकार स्थापित हो सकता है। वह राजयोगी सिद्ध होकर शरीर रहते हुए भी ब्रह्म-सायुज्य प्राप्त करता है। ब्रह्म और ब्रह्मशक्तिका अभेद ज्ञान हो जानेसे क्या स्त्रीशरीर क्या पुरुषशरीर दोनों शरीरोंमें वह केवल शिवशक्ति-योगको ही अनुभव करता है। स्वयम् नित्य मुक्त, नित्य तृप्त, इच्छा-रहित और ब्रह्मानन्दमें मग्न रहकर केवल जगत्को ब्रह्मानन्द सागरमें अवगाहन कराता है। स्पर्शेन्द्रिय व्यापक होनेपर भी उसका केन्द्र स्थूल-शरीरमें सर्वविजयी होकर विद्यमान रहता है। वह सृष्टिके दुर्दमनीय प्रवाहसे और प्रकृतिकी आकर्षण-विकर्षणशक्तिसे युक्त और एक कर्मेन्द्रियसे युक्त होनेसे अजेय रहता है। इसकारण इन्द्रियोंका सम्बन्ध सर्वथा त्याग किये विना स्पर्शोद्गीथ साधन असम्भव है।

अमुना कारणेनैव लोकस्त्रैगुण्यमास्थितः ।
एतत्साधनमुत्कृष्टं खपुष्पमिव मन्यते ॥ ७४ ॥
त्रैगुण्यविषया वेदा अप्यस्मिन्मौनमाश्रिताः ।

अधिकारिनिर्णयः ।

मन्त्रे हठे लये वापि पूर्णं साफल्यमाप्तवान् ।
राजयोगस्याधिकारं योगिराजः प्रपद्यते ॥ ७५ ॥
लययोगे सिद्धकामः कृतकृत्यश्च साधकः ।
गुरोरनुग्रहाद्योगी शक्त उद्गीथसा[illegible] ॥ ७६ ॥
लययोगादुन्नतस्य राजयोगस्य तत्त्ववित् ।
स्पर्शोद्गीथरसोद्गीथे ज्ञातुं शक्नोति नापरः ॥ ७७ ॥
सम्प्राप्य राजयोगेन स्वं स्वरूपं यथा प्रथम् ।
ज्ञानकर्मेन्द्रियैः सर्वैस्त्यक्तसम्बन्ध आत्मवित् ॥ ७८ ॥
ब्रह्मैव राजते नूनं सर्वाश्रयमतीन्द्रियम् ।
देवदुर्लभमुद्गीथं तथैवाधिकरोत्यसौ ॥ ७९ ॥

यही कारण है कि, त्रिगुणमें रहनेवाले व्यक्ति इसको खपुष्प समान समझते हैं और त्रैगुण्य विषयक वेद इसके विषयमें मौन रहते हैं ॥ ६७-७४ ॥

अधिकारी निर्णय ।

मन्त्रयोग, हठयोग अथवा लययोग इन तीनोंमेंसे किसीमें पूर्ण-सफलताप्राप्त योगिराज ही राजयोगका अधिकारी होता है। लययोगमें सिद्धकाम कृतकृत्य योगी ही उद्गीथ साधनका अधिकारी गुरुकृपासे हो सकता है। रसोद्गीथ और स्पर्शोद्गीथका तो रहस्य लययोग मार्गसे उन्नतिशील राजयोगका पूर्ण अधिकारी सिद्धपुरुष ही समझ सकता है। जैसे ब्रह्म सर्वाश्रय होनेपर भी अतीन्द्रिय है, उसीप्रकार राजयोगद्वारा स्वस्वरूप प्राप्त करके, जब सिद्ध योगिराज इन्द्रिय-सम्बन्धसेरहित होता है और पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंमेंसे कोई भी उसको विचलित करनेकी तो बात ही क्या है; उसको स्पर्श नहीं कर सकती, तब यह देव-दुर्लभ अधिकार उसको प्राप्त होता है ॥ ७५-७९ ॥

समाधिवर्णनम् ।

सरित्पतौ पतित्वाम्बु यथा भिन्नमियाल्लयम् ।
तथा भिन्नं मनस्तत्र समाधिं समवाप्नुयात् ॥ १ ॥
सलिलं सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः ।
तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥ २ ॥
महाभावो महाबोधो महालय इति क्रमात् ।
त्रिधा समाधिर्भवति प्रोक्तमेतन्महर्षिभिः ॥ ३ ॥
प्रशस्तो लययोगस्य समाधिर्हि महालयः ।
नादस्य बिन्दोः साहाय्यात्समाधिरधिगम्यते ॥ ४ ॥
नादस्य बिन्दोश्चैकत्वे मनस्तत्र विलीयते ।
दृश्यनाशात् तदा द्रष्टू रूपमेति प्रकाशताम् ॥ ५ ॥
प्रशस्तं साधनमिदं समाधिर्व्यपदिश्यते ।
ब्रह्मनिष्ठैर्गुरुपरैः प्राप्योऽसौ सुदृढव्रतैः ॥ ६ ॥

इत्यध्यात्मविद्यायां योगशास्त्रे समाप्तेयं लययोगसंहिता ।

समाधिवर्णन ।

जिसप्रकार जलका बिन्दु समुद्रमें मिलकर समुद्रसे अभिन्न हो जाता है, उसीप्रकार ध्येयरूप परमात्मामें संलग्न हुआ अन्तःकरण अन्तमें उसी ध्येय अर्थात् परमेश्वरके अभिन्नरूपको धारणकर लेता है, इसी अवस्थाको समाधि कहते हैं। जिसप्रकार जलमें निक्षिप्त हुआ लवण क्रमशः जलके सम्बन्धसे जलमें ही मिल जाता है, उसीप्रकार विषयसे स्वतन्त्र हुआ मन ध्येयवस्तु परमात्मामें युक्त होकर अन्तमें परमात्माके स्वरूपको ही प्राप्त हो जाता है, यह आत्मस्वरूप प्राप्ति ही समाधि कहलाती है। लययोगकी सर्वोत्तम समाधिको महालय कहते हैं। नाद और बिन्दुकी सहायतासे इस समाधिकी सिद्धि होती है। प्रथम नाद और बिन्दुका एकत्व होकर उसकेसाथ मन भी लय होता है, उसीसमय दृश्यकानाश होकर द्रष्टाका स्वरूप प्रकट हो जाता है। इसी सर्वोत्तम साधनको समाधि कहते हैं। यही लययोगका नवाङ्गात्मक गूढ़ रहस्यपूर्ण अपूर्व साधनहै, जिसको योगिराज श्रीमद्गुरुदेवकी कृपासे प्राप्तकर साधक कृतकृत्य हो सकते हैं ॥१-६॥

अध्यात्म विद्याके अन्तर्गत योगशास्त्रकी यह लययोग-संहिता समाप्त हुई।

इतिशम्।

श्रीभारतधर्म महामण्डलके सदस्य बनिये

श्रीभारतधर्म महामण्डलके सदस्य बनकर अपने धर्म, अपनी गौरवान्वित प्राचीन संस्कृति एवं प्राचीन परम्पराकी रक्षा तथा प्रचारमें सहायक बनकर पुण्य तथा यश प्राप्त करें। श्रीभारतधर्म महामण्डलके पाँच श्रेणीके सदस्य होते हैं। यथा-वंशानुक्रम संरक्षक, चन्दा कमसे कम एकबार ५०००) पाँच हजार, आजीवन संरक्षक, चन्दा कमसे कम एकबार २०००) दो हजार. उपसंरक्षक, चन्दा कमसे कम एकबार १०००) एक हजार, आजीवन प्रतिनिधि कमसे कम एकबार २००) दो सौ रुपये तथा प्रतिनिधि २५) पचीस रुपये वार्षिक। श्रीभारतधर्म महामण्डलके उपर्युक्त सदस्योंमेंसे श्रीमहा-मण्डलकी संचालक समिति अखिल भारतीय मन्त्रीसभाका निर्वाचन होता है और यही मन्त्री सभा श्रीमहामण्डलके सब कार्य विभागोंकी व्यवस्था तथा संचालन करती है। आप भी श्रीमहामण्डलके उपर्युक्त किसी भी श्रेणीके सदस्य बनकर श्रीमहामण्डलके संचालनमें सहयोग प्रदान कर सकते हैं।

पत्राचारका पता—
प्रधानमन्त्री
श्रीभारतधर्म महामण्डल
जगतगंज, वाराणसी कैण्ट

अद्वितीय धार्मिक प्रकाशन

सनातनधर्मका विश्वकोष-धर्मकल्पद्रुम

धर्मकल्पद्रुमका जैसा नाम है, वैसे ही इसके गुण हैं। वास्तवमें यह सनातनधर्मका कल्पवृक्ष ही है। सनातनधर्मका ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसका इस वृहद् ग्रन्थमें भलीभाँति निरूपण न किया गया हो। इस एक ही ग्रन्थके अध्ययनसे सनातनधर्मका सर्वाङ्गपूर्ण व्यापक स्वरूप जिज्ञासुके समझमें आ जाता है। भगवत्पूज्यपाद महर्षि स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजके सुयोग्य शिष्य पूज्यपाद स्वामी दयानन्दजी महाराजने अपने परमाराध्य गुरुदेवके आदेशानुसार इस ग्रन्थका प्रणयन किया था। इस ग्रन्थसे आजकलके अशास्त्रीय और विज्ञान-रहित धर्मग्रन्थों और धर्म प्रचारकेद्वारा जो हानि हो रही है, वह सब दूर होकर यथार्थ वैदिक सनातनधर्मका प्रचार होगा। इस ग्रन्थरत्नमें साम्प्रदायिक पक्षपात लेशमात्र भी नहीं है और निष्पक्ष रूपसे सब विषय प्रतिपादित किये गये हैं। इस ग्रन्थकी यह एक और भी विशेषता है कि, हिन्दू-शास्त्रके सभी विज्ञान शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके अतिरिक्त आजकलकी पदार्थ विद्या (Science) के-द्वारा भी प्रतिपादित किये गये हैं, जिससे आजकलका नवशिक्षित समाज भी उससे लाभ उठा सके। यह ग्रन्थ आठखण्डोंमें सम्पूर्ण हुआ है। प्रथमखण्ड मूल्य-६); द्वितीयका ३); तृतीयका रू० ३.५० पैसा; चतुर्थका ५); पंचमका ३.५०; षष्ठका ४); सप्तमका ३.५०पैसा और अष्टम खण्डका ४) है।

ग्रन्थ मिलनेका पता—

श्रीभारतधर्म महामण्डल

जगतगंज, बाराणसी, कैण्ट